१७४ pL

श्री

स्वामी रामतीर्थ ।

उनके सदुपदेश–भाग १४ ।

प्रकाशक:

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ ।

प्रति २००० | मार्च १९२२ चैत्र १९७९

मूल्य डाक व्यय रहित ।

बिना जिल्द ॥=) | फुटकर | सजिल्द ।||=)

सुख समाचार।

बढ़िया कागज का दाम कुछ घट जाने से लीग ने विशेष संस्करण वाली जिल्द का वार्षिक शुल्क ६) रु० के स्थान पर ५) रु० कर दिया है, अर्थात् १) रु० घटा दिया है। जो सज्जन वर्तमान वर्ष का ६) रु० पेशगी शुल्क दे चुके हैं, वे १) रु० वापिस लेने के पूर्ण अधिकारी हैं। यदि वे उस रुपया से लीग की कोई पुस्तक मंगवाना चाहें तो मंगवा सकते हैं, या जिस रीति से अपना एक रुपया वापिस लेना चाहें ले सकते हैं।

मंत्री

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

के० सी० बनर्जी के प्रबन्ध से
एंग्लो-ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी — १९२२

निवेदन।

ईश्वर का धन्यवाद है कि अपनी प्रतिज्ञानुसार आप की सेवा में १४ वां भाग शीघ्र भेजने में हम सफल हुए हैं। बढ़िया कागज का दाम थोड़ा घट जाने से लीग ने विशेष संस्करण वाली जिल्द का शुल्क १) रु० कम करदिया है, पर घटिया (देशी) कागज का दाम अभी नहीं घटा और न स्टराइक के कारण माल ही मारकट में मिलता है, इसलिये वैसा कागज नहीं मिल सका जैसा कि १३ वां भाग में लगा है, और न आगे मिलने की कोई सम्भावना है।

इस कार्यालय में दो पुस्तकें नई आई हैं, जो विषय और लेखनी के लिहाज़ से अपूर्व हैं। इन का विज्ञापन इस पृष्ठ की पुश्त पर दे दिया गया है। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के ज्ञाता इन पुस्तकों को जरूर पढ़ें।

मैनेजर

विषयानुक्रम

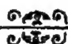
श्री स्वामी राम तीर्थ।



संन्यास आश्रम का दूसरा चित्र
जो लखनऊ १९०२ में लिया गया।



स्वामी रामतीर्थ।



भारत का भविष्य।



(स्वर्गवासी रायबहादुर लाला बैजनाथ द्वारा लिखित "हिन्दुधर्म प्राचीन व अर्वाचीन"—'Hinduism, Ancient and Modern'—नामक ग्रंथ में स्वामी राम की लिखी हुई प्रस्तावना)

राम अब भारतवर्ष के भविष्य-सम्बन्ध में जो कि आशा-जनक और उज्जवल दिखाई देता है कुछ शब्द कहेगा।

संसार में प्रत्येक वस्तु की गति तालबद्ध है, और सारी सृष्टि काल-चक्र (सामयिक-चक्र-क्रम, law of periodicity) के नियम के अधीन है। इसी नियम के अनुसार विभूति के सूर्य व नक्षत्र को भी घूमना चाहिये। एक समय था जब कि भारत वर्ष में ज्ञान और वैभव का भास्कर मध्याकाश पर प्रकाशमान था। ऐतहासिक दृष्टि से देखा जाय तो

आकाश मण्डल के अन्य नक्षत्रों की तरह यह सूर्य भी धीरे २ पश्चिम की ओर चढ़ता हुआ चला। पहले वह ईरान, इसीरिया आदि देशों से होता हुआ पश्चिम की ओर बढ़ा। मिश्र देश को इस की मध्यान्ह किरणें देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस के बाद यूनान की बारी आई। तत्पश्चात् रोम को इसी के मध्यान्ह तेज को भोगने का आनन्द मिला। फिर इस के बाद जर्मनी, फ्रान्स और स्पेन की जागृति इसी के प्रकाश से हुई।

अन्त में इसी वैभव-सूर्य की चका चौंध करने वाली किरणें इंगलैंड के भाग में आईं। ये लो! सूर्य्य पश्चिम की ओर और बढ़ा और अमरीका को धन धान्य से परिपूर्ण कर दिया। संयुक्त देश (अमरीका) में भी वह अपने नियमानुसार पूर्व की ओर अर्थात् न्यूयार्क (New york) से चल कर पश्चिम की ओर बढ़ते २ कैलीफोरनिया (California) तक पहुँचा। जब भारत वर्ष में (वैभव-सूर्य के चढ़ने से) दिन था, तब अमरीका को कोई नहीं जानता था। अब जब कि अमरीका में दिन है तो दरिद्रता और पीड़ा की रात्रि भारत वर्ष पर छा रही है। किन्तु नहीं, विभूति का सूर्य शांति-महासागर (pacific ocean) से भी गुजरता दिखाई दे रहा है। और जापान सर्वशिरोमणि राष्ट्रों की श्रेणी में आने लगा है। यदि प्राकृत-नियम विश्वासनीय और सत्य हैं, तो ज्ञान व विभूति का सूर्य अपना चक्र (प्रदक्षणा) अवश्य पूर्ण करेगा, और भारत वर्ष पर एक बार द्विगुण कांति से दीप्तवान होगा। तथास्तु

भारत वर्ष का प्राचीन इतिहास देखने से हमें ज्ञान पड़ता है कि अन्य देशों की दशा के समान भारत वर्ष में भी रात्रि

(अज्ञान व दरिद्रता रूपी अन्धकार) का भीतरी मुख्य कारण संकुचता [परिच्छिन्नता] के अतिरिक्त कुछ नहीं ; अर्थात् "इस कमरे [भारत वर्ष] में कैसा शोभायमान व सुहावना उजाला है, ओह ! यह मेरा है ! मेरा है !! केवल मैं ही इस का स्वामी बना रहूं", ऐसे कहते हुये हमने निस्संदेह परदों को गिरा दिया और दरवाजे तथा खिड़कियां बंद कर दीं। और भारत के उजाले को केवल अपना बनाने की चेष्टा में हम ने [भारत में] अंधकार उत्पन्न कर लिया। न ईश्वर किसी व्यक्ति विशेष का पक्षपाती है और न विभूति ही स्थान-बद्ध है। एकता [तत्वमसि] के अनुभव रूपी ईश्वरीय तत्त्व को हम अपने आचरणों में लाना छोड़ बैठे, और इस प्रकार परस्पर विभक्त और दुर्बल होगये। बड़ा भारी पाप जो [हिन्दुजाति के] नेताओं ने किया वह यह था कि अपनी सन्तान अन्त्यज जातियों के साथ अपने स्वार्थ-त्याग रूपी कर्त्तव्यों की अपेक्षा अपने स्वार्थपरता रूपी अधिकारों पर ही उन्होंने विशेष दृष्टि रक्खी। अस्तु, जो होना था, वह होचुका, इसी अवस्था के बदलने की आवश्यकता के कारण समय का रंग बदलता जा रहा है, और आशाजनक शकुन दिखाई दे रहे हैं। इस में संदेह नहीं, जो खूब सोते हैं, वे खूब जागते भी हैं। भारत वर्ष बहुत काल तक सोता रहा। निस्संदेह, यद्यपि धीमे २ आलस्य टूटता जा रहा है; और पूर्ण निश्चय के साथ, यद्यपि धीरे २ यह पुराण-प्रियता [नव-विद्वेषता, Conservatism] परिवर्तित परिस्थिति को अंगीकार करने में उदारता दर्शा रही है।

प्रगति का नियम (Principle of progress) बाह्य रूप और क्रिया में तो विभिन्नता और भीतरी स्वरूप व भाव में

पूर्ण एकता चाहता है। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था का कारण तो राष्ट्रीय प्रगति व विकास था जिस से कार्य और व्यवहार का संगठित विभाग और हृदय तथा भाव का पूर्ण मिलाप स्पष्ट होता था। परन्तु समय के प्रभाव से भीतरी तत्त्व [मिलाप] की अपेक्षा बाहरी बातों [विभाग] पर लोगों की दृष्टि अधिक होने लगी जिस से स्वाभाविक क्रम बदल गया, प्रगति वा उत्क्रान्ति के स्थान पर अवगति वा अवक्रान्ति ने डेरा जमाया, और अन्त में प्रेम तत्त्व-का विभाग और व्यवहार का मिलाप होगया, अर्थात् एक वर्ण के लोगों ने दूसरे वर्ण के व्यवहार [कर्म वा वृत्ति] को गृहण कर लिया, तिसपर प्राचीन जाति-भेद ने हृदयों को पहिले से भी अधिक फाड़ डाला। देह वा चर्म-दृष्टि [अर्थात् जातीय पक्षपात] के अधिक बढ़ जाने से शुद्धस्वरूप (आत्मा वा ईश्वर) इन क्षणभंगुर नाम रूप उपाधियों के गढ़े में लुप्त होगया। श्रुति [आत्मा-सम्बन्धी वैदिक ज्ञान] वास्तव में निर्जीव कर दी गई, और स्मृति [प्राचीन रीति सम्बन्धी धर्म-शास्त्र] एक अत्याचारी की संस्था बना दी गई। इस प्रकार स्मृति श्रुति के ऊपर हावी होगई। किसी ने कहा है कि व्याकरण भाषा का श्मशान है (Grammer is the grave of language)। यह ठीक है कि यूंही आप भाषा को अचल और सुरक्षित बनाने का प्रयत्न कीजिये, वहीं भाषा तत्काल निर्जीव होजायगी। ठीक इसी प्रकार, नियमों, रीतियों और कर्म काण्ड की दृढ़ अचलता राष्ट्र का सत्त्व भक्षण करलेती है। कुछ काल तक तो ये नियम और शासन उपयोगी होते हैं, जैसे कि बीज या दाने की रक्षा और स्थिति के लिये उस के ऊपर का छिलका उपयोगी होता है; परन्तु कुछ काल के बाद उन में यदि परिवर्तन न हो, तो वे उन्नति के प्रतिबंधक हो जाते हैं। प्रिय देश-भाइयो! याद रखिये, ये

स्मृतियां और शासन आप के लिये हैं, आप उनके लिये नहीं। सर्वत्र नित्यश्रुति का प्रचार कीजिये, किन्तु स्मृति को समय की आवश्यकता के अनुसार बना लीजिये। स्मृति पर तुम्हारा पैतृक अधिकार (heritage) हो, न कि स्मृति का तुम पर। भारत वर्ष में नदीपात्र (beds of rivers) बदल गये, हिम-रेखा (Snow lines) स्थान-च्युत हो गईं, जंगलों के स्थान पर खेत बन गये, देश [भारत भूमि] का रूप भी बदल गया, राज्यपद्धति बदल गई, भाषा बदल गई, देशवासियों के वर्ण [रंग] बदल गये, तिस पर भी इस क्षणभंगुर और अस्थिर जगत में आप प्राचीन रीति-रवाज को स्थिर करने के यत्न में लगे हुए हैं, जो आज कल वस्तुतः निस्सार हैं। उस प्राणी की दशा वास्तव में शोचनीय है कि जो आगे को चलना चाहता है परन्तु देखता निरन्तर पीछे को है। ऐसा मनुष्य पग पग पर निःसन्देह ठोकर खाता है।

वंश-परम्परा [heredity] और कालानुकूल-वर्तन [adaptation] के नियमों पर जीवन का विकास निर्भर है। वंश-परम्परा के नियम का पशुवर्ग में साम्राज्य है। परन्तु कालानुकूल-वर्तन या शिक्षा का मनुष्ययोनि में साम्राज्य है जिस के कारण मनुष्य पशुओं व बनस्पति से विलक्षित है। एक सुन्दर छोटा सा बालक नन्हें पिल्ले [puppy] के समान अज्ञान और मूढ़ होता है; नहीं, नहीं, पिल्ला या तोते का बच्चा मनुष्य के बालक से प्रायः अधिक ज्ञान रखता है। किन्तु अन्तर इस में यह है कि पिल्ला या तोते का बच्चा तो जन्मते ही वंश-परम्परा के नियमानुसार आवश्यक ज्ञान अपने माता पिता से पा लेता है, परन्तु मनुष्य का बालक कालानुकूल-वर्तन वा शिक्षा द्वारा समस्त संसार अपने अधीन कर सकता है।

मेरे प्यारे हिन्दुभाइयों ! परिवर्तन या कालानुकूल-वर्तन के नियम से द्वेष करके और प्राचीन रीति रिवाज तथा वंश-परम्परा के नियमों पर ज़ोर देने से, ईश्वर के वास्ते, अपने आप को मनुष्यत्व [मानवी पद] से नीचे मत गिरने दो।

तुम इस देश और काल में रहते हो। तुम भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों की सन्तान हो, किन्तु तुम अब उन के युग [समय] में नहीं रहते हो, क्या यह ठीक है ? तुम्हें अब इञ्जिन, जहाज और तारघर इत्यादि से वास्ता पड़ा है; तुम अब वर्तमान संसार से अपने को पृथक नहीं कर सकते; तुम्हारा झगड़ा [मुकाबला] बीसवीं शताब्दी के योरूप और अमरीका के शास्त्रज्ञ, शिल्पज्ञ और कारीगरों के साथ है; तुम इस मुकाबले से नहीं बच सकते। और यदि तुम विचार पूर्वक ध्यान दोगे तो तुम्हें पता लग जायगा कि जबतक समय की परिवर्तित परिस्तिथि में तुम अपने को रहने योग्य नहीं बना लेते, तो तुम्हारा इस संसार से नामो-निशां मिट जायगा। यदि तुम नूतन प्रकाश को अपनाने में उद्यत और प्रसन्न नहीं, जो प्रकाश कि आपही की भूमि का वास्तव में पुराना प्रकाश है, तो जाओ अपने पूर्वजों के साथ पित्रलोक में वास करो। यहां क्यों ठहरे हुये हो ? जाइये, नमस्कार।

राम का यह प्रयोजन नहीं है कि आप का राष्ट्रीयत्व सब नष्ट हो जाय। पौधा बाहर से जल, वायु, खाद और मिट्टी सोख लेता है, तो इस से क्या वह वायु, जल और पृथिवी में बदल जाता है ? कभी नहीं। इसी प्रकार आपको भी बाह्य वस्तुएं ग्रहण कर उन्हें अपनाते हुये अपनी उन्नति और विकास करना चाहिये, परन्तु श्रुति की वास्तविक अवस्था

का संचार आपके हृदय व नस नाड़ी में सर्वदा होते रहना चाहिये।

शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि उस के द्वारा हम अपने देश के समस्त साधनों वा सामग्री का सदुपयोग कर सकें। उचित शिक्षा लोगों को इस योग्य बना देती है कि वे उस के द्वारा पृथिवी को बहुफलप्रद [उर्वर, fertile], खानों को धनोत्पादक [लाभपूर्ण], व्योपार को समृद्ध, शरीरों को उद्योगी, मनों को अपूर्वरचक (स्वतः कल्पक), हृदयों को शुद्ध पवित्र, कलाकौशल को विस्तृत और राष्ट्र को सम्मिलित [संघटित] पहिले से अधिक बना दें। अपना पाण्डित्य दर्शाने के लिये बड़े बड़े शास्त्रों के प्रमाण देने की योग्यता, प्राचीन ग्रन्थों के वचनों के आशय को मोड़ तोड़ करने का व्यर्थ [मूर्खता पूर्ण] छिद्रान्वेषण, जीवन भर बर्ताव में न आने वाले विषयों का अध्ययन, इस का नाम शिक्षा नहीं है। व्यवहार में न लाने वाले ज्ञान का मस्तिष्क में भर लेना [वा ठोस लेना] आध्यात्मिक बद्धकोष्ठ [constipation, कब्ज़] अथवा मानसिक अजीर्ण है।

यह बात सन्तोष जनक है कि ऊपरी उत्साह-भंग और उग्र किन्तु निर्जीव विरोधों के होते हुए भी धीरे-धीरे किन्तु निश्चय पूर्वक हिन्दु भाई उचित शिक्षा पा रहे और आवश्यक कालानुकूल,वर्तन adaptation भी दर्शा रहेहैं। पुराने वा प्राचीन समयों के सामाजिक बन्धन धीरे-धीरे ढीले पड़ते जारहे हैं। और वर्ण-व्यवस्था दिन प्रतिदिन अपनी असली स्थिति पर आ रही है। पाश्चात्य विज्ञान-शास्त्र का तिरस्कार करने के स्थान पर हिन्दु आज उसे अपनी ब्रह्म विद्या [श्रुति] का भारी सहकारी समझते हुए उस का सत्कार कर रहे हैं।

हिन्दुओं के विवाह के सम्बन्ध में, भिन्न २ जातियां प्रायः

कट्टर सनातनधर्मी और विद्वान पण्डितों के आधिपत्य में विवाह में आयु की अवधि बढ़ाने वाले नियामों का विधान कर रही हैं। और कभी कभी भिन्न भिन्न जातियों में एक दूसरे के अनुकूल विवाह को चुपके से स्वीकार भी कर लेतीहैं।

प्रत्यक्ष में भोजन का प्रश्न हिन्दुओं में इतना अनुचित विस्तार पकड़ गया है कि कुछ एक ने हमारे धर्म को केवल चौका धर्म (kitchen religion) की उपाधि दे दी है। परन्तु इस सम्बन्ध में इतना कोलाहल मचने पर भी हमारी शक्ति अनुचित ओर बह रही है और अत्यन्त व्यर्थ जा रही है। शास्त्री रीति से हमने कभी ऐसी विवेचना नहीं की कि हमें क्या और कैसे आहार करना चाहिये। जैसा आप का आहार होगा वैसा आप का विचार और आचार होजायगा। जो वस्तु कि मशीन में न डाली गई हो वह आप मशीन से प्राप्त कैसे कर सकते हैं। जो मनुष्य पट्ठों (स्नायु) और मस्तिष्क को पुष्ट करने वाला आहार नहीं खाते, उनसे शारीरिक और मानसिक (मस्तिष्क सम्बन्धी) काम की आशा करना निचान्त मूर्खता है। भाजी, तरकारी, अनाज और फलों में से हम आसानी से ऐसी उचित वस्तुएं चुन सकते हैं कि जिन से मानसिक तथा शारीरिक शक्ति सुरक्षित रखने के लिये यथेष्ट नाईट्रेट (यवक्षार, nitrates और फासफेट phosphates) मिल सकें। क्या यह खेद की बात नहीं कि हम घी को इतना महत्व देते हैं जबकि उस में दिमाग और पट्ठों को बनाने का कोई अंश नहीं, और जौ को तुच्छ समझते हैं जो कि विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उत्तम आहार है? मिर्च, मसाला तथा औषधियां हमारे शरीर-यन्त्र को गड़बड़ में डाल देती हैं, हमारे स्वाभाविक स्वाद को बदल देती हैं, और सर्वप्रकार

की दुर्बलता, बीमारी (रोग) तथा मृत्यु को बुला लेती हैं। मक्खन, चीनी और नशास्ता (starch) जैसे कारबोनेट्स पदार्थ (corbonates) जो केवल फेफड़ों के लिये ईंधन का काम देते हैं किन्तु पट्ठों और दिमाग को किसी प्रकार से पुष्टि नहीं देते हैं, उनको सब से अधिक महत्व दिया जाता है। और इस का परिणाम यह होता है कि आलस्य, निद्रा-तन्द्रा और थकावट का रहना अनिवार्य हो जाता है। ज्ञान (विज्ञान-शास्त्र, विद्या) हमारे भोजन के विषय पथ दर्शक होना चाहिये

भारतवर्ष के साधू इस देश के लिये एक अद्भुत और अद्वितीय दृश्य है। जिस प्रकार तलैया के पानी पर हरी काई जम जाती है, वैसे भारत वर्ष में साधु फैले हुए हैं। इस समय ये पूरे बावन लाख की संख्या में हैं। इन में से कुछ साधु तो निःसन्देह सुन्दर कमल हैं जो तलैया वा सरोवर की शोभा बढ़ा रहे हैं, किन्तु अधिक अंश इन में रोगोत्पादक काई रूपी मल है। ज़रा जल को बहने दीजिये, मनुष्यों में जीवन संचार होने दीजिये, काई रूपी मल शीघ्र बह जायगा। ये साधु भारतवर्षीय इतिहास के गत अवनत काल के स्वाभाविक परिणाम हैं। परन्तु आज कल सुधार का साधारण प्रभाव जितना गृहस्थियों के स्वभाव व रुचियों को बदल रहा है, उतना साधुओं में भी परिवर्तन पैदा कर रहा है। अब ऐसे साधु उत्पन्न हो रहे हैं कि जो राष्ट्रीय वृक्ष पर जोंक और आकाश-बेल (प्राणनाशक) बने रहने के स्थान पर मन और शरीर से यदि अधिक नहीं तो इस वृक्ष की खाद बननें के इच्छुक हैं। मेहनत वा मज़दूरी के आदर का भाव तथा निष्काम कर्म का धर्म जो आजतक लाखों गीताभक्तों का ज़ुबानी जमा-खर्च था, अब भगवान् कृष्ण की भूमि में लाचार थोड़ा व बहुत वर्ताव में आता अनुभव हो रहा है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ २. ४८

अर्थः—हे अर्जुन! योग में स्थित हुआ, कर्मसंग का त्याग कर और सिद्धि असिद्धि में सम होकर तू कर्मों को कर। यह समता ही योग कहलाती है।

"And live in action! Labour;
Make thine acts thy piety;
Casting all self aside;
Contemning gain and merit;
Equable in good or evil;
Equability is yoga, is piety!" (Gita. 2. 48)

कुछ साधु और गृहस्थों में प्रवल भक्ति और तीव्र विवेक दिखाई पड़ता है। और जिस किसी को भारतवर्ष की वाह्याभ्यान्तर तथा प्राचीन व अर्वाचीन स्थिति विदित है, वह यह सुगमता से भान कर सकता है कि व्यावहारिक वेदान्त अथवा भक्ति पूर्वक कर्मयुक्त संन्यास ही शिक्षित भारतवर्ष का भावी धर्म होगा।

व्यावहारिक वेदान्त
या
भक्ति पूर्वक कर्मयुक्त संन्यास।

सच्ची भक्ति और सच्चे ज्ञान से सत्यकर्म पृथक नहीं हो सकता। हमारे जीवन के प्रत्येक कर्म, भाव और विचार को श्रुति-धर्म [व्यावहारिक वेदान्त] एक यज्ञ [देवताओं के प्रति आहुति] बना देता है।

वेदान्त की परिभाषा में देव का अर्थ भिन्न २ इन्द्रियों को

प्राण और प्रकाश देने वाली शक्ति है; और किसी एक इन्द्रिय के देवता से अभिप्राय ब्रह्माण्ड की समष्टि इन्द्रिय है; जैसे आध्यात्मिक और आधिदैविक। चक्षुर्देवता सब प्राणियों की चक्षु है, जो आदित्य कहलाता है, और जिसका चिन्ह (मूर्ति) ब्रह्माण्ड का नेत्र अर्थात् भौतिक सूर्य है। हस्तेन्द्रिय का देवता सब हाथों की शक्ति है, जो इन्द्र कहलाती है। पाद-देवता सब पाओं की शक्ति है, जिसे विष्णु कहते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के विषय में समझिये। इस तरह देवयज्ञ से ठीक २ अभिप्राय अपनी व्यष्टि इन्द्रियों को ब्रह्माण्ड की समष्टि इन्द्रियों में अर्पण करना है। इन्द्र देवता को आहुति देने से तात्पर्य इस भूमि पर समस्त हाथों के हित में अपना व्यष्टि हाथ अर्पण करना है, अर्थात् देश के सब हाथों के हित में काम करना इन्द्र-देव-यज्ञ है। आदित्य देवता को आहुति देने से अभिप्राय ब्रह्माण्ड के सब नेत्रों में ईश्वर का अस्तित्व भान करना है, अर्थात् सब नेत्रों का सम्मान और आदर करना; अपने अनुचित व्यवहार से किसी की दृष्टि को कुपित न करना; बल्कि जिस किसी की भी दृष्टि अपने पर पड़े, उसे प्रसन्नता (कृपादृष्टि), आशीर्वाद और प्रेम से पेश आना; अपनी व्यष्टि नेत्र-इन्द्रिय को ब्रह्माण्ड की समष्टि नेत्र-इन्द्रिय के तईं ऐसी अत्यन्त प्रीति वा भक्ति से अर्पण करना कि परिच्छिन्न अहंकार का अधिकार नितान्त लुप्त होजाय और समष्टि नेत्र (आदित्य) स्वयं आप के नेत्रों द्वारा ही भासमान होने लगे; यह आदित्य-देव-यज्ञ है। बृहस्पति देवता को आहुति देने से अभिप्राय अपनी व्यष्टि बुद्धि को देश की समष्टि बुद्धि के अर्पण करना है, अथवा देश की भलाई में इस प्रकार चिन्तन करना है कि जिस से हम में और हमारे देश निवासियों में कोई अन्तर न रहे, और देश के कल्याण में

अपना कल्याण तथा देश के आनन्द में अपना आनन्द भान होने लगे।

संक्षेपतः यज्ञ से अभिप्राय अपने आप को ठीक अपना पड़ोसी, अपने आप को समस्त से अभेद तथा सब का आत्म स्वरूप होने में अपने तुच्छ अहंकार का नाश अनुभव करते हुए उस को कार्य में परिणत करना है। यही है स्वार्थता का सूली पर चढ़ना, और यही है समष्टि आत्मा का पुनरुत्थान। इसका एक अंग (रूप) साधारणतः भक्ति और दूसरा अंग (रूप) ज्ञान कहलाता है। ॐ ॐ

Take my life and let it be.
Humbly offered, All, to Thee.

Take my hands and let them be
Working, serving Thee, yea! Thee.

Take my heart and let it be.
Full saturated, Lord, with Thee.

Take my eyes and let them be.
Intoxicated, God, with Thee.

Take this mind and let it be.
All day long a shrine for Thee

बरवा छन्द।

१—मम सर्वस स्वीकारहु, हे कृपानिधान!
अर्पहुँ दोउ कर जोरे, मैं श्री भगवान!
२—स्वीकारहु हाथन को, हे श्री महराज!
तव सेवा के कारण, मैं अर्पों आज!
३—हृदय मोर स्वीकारहु, हे अति निष्काम!
तव मूरति हिय भासै, सब सुख की धाम!

४—नयन मोर स्वीकारहु, हे श्री जगदीश !
भक्ति-धुंध है जावें, मैं नावौं शीश !
५—चित्त मोर स्वीकारहु, तुम अहो सुजान !
मंदिर होय तुम्हारो; कछु हेतु न आन !
६—अस न रहे कछु मोपै, जो होवे मोर ;
फुरै मोर सब तुममें, नाहिं दूसर ठौर !

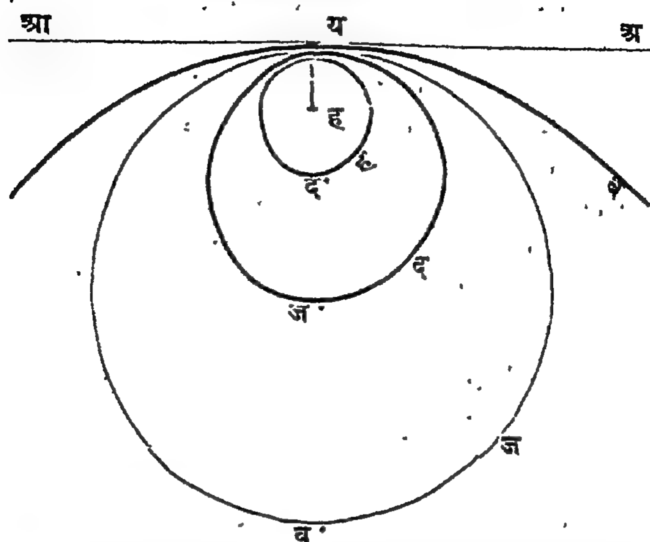
यह उक्त समर्पण पूर्णता पर पहुंचने के पश्चात् "तत्त्वमसि" (वह ब्रह्म तू ही है) इस महा वाक्य का आनन्द-मय स्वरूप अनुभव होता है।

आप स्वदेशानुरागी या स्वदेशभक्त हुआ चाहते हैं ? तब अपने आप को देश तथा देश बन्धुओं के प्रेम में एकताल [अभेद] करो, उनके साथ अपनी एकता अनुभव करो। आपकी यह परिच्छिन्न व्यक्ति की छाया भी आप में और आप के देश बन्धुओं में एक पतला काच का पर्दा तक न होने पाय। अपने प्राणों को स्वदेश-हित में अर्पण करते हुए आप एक सच्चा आध्यात्मिक योद्धा बनिये। क्षुद्र अहंकार के त्याग से स्वयं समस्त देश रूप होने पर आप के मन में जो विचार उत्पन्न होगा, वह आप का ही नहीं किन्तु सारे देश का होगा। तुम चलो, देश तुम्हारे साथ चलेगा। तुम चित्त में स्वास्थ्य का ख्याल करो, आप के देशबन्धु स्वस्थ होजायंगे। आप का बल उनके नस नाड़ी में धड़कने लगेगा। ओह, मुझे निश्चय करने दीजिये, कि "मैं भारत वर्ष, समस्त भारत वर्ष हूं। भारत भूमि मेरा अपना शरीर है। कन्याकुमारी मेरा पाओं है। हिमाचल मेरा शिर है। मेरे बालों से श्री गंगा जी बहती हैं। मेरे शिर से सिन्धु और ब्रह्मपुत्र (नद) निकलते हैं। विन्ध्या-

चल मेरी कमर के गिर्द कमरबन्द है। कोरूमएडल मेरी दहिनी और मालावार मेरी बायीं जंघा (टांग) है। मैं समस्त भारत वर्ष हूं। इस की पूर्व और पश्चिम दिशाएं मेरी दोनों भुजाएं हैं, और मैं उन भुजाओं को मनुष्य जाति को अलिंगन करने के लिये सीधा फैलाता हूं। आहा, मेरे शरीर का ऐसा ढांचा (वा आकार) है। यह सीधा खड़ा है और अनन्त आकाश की ओर दृष्टि दौड़ा रहा है। परन्तु मेरी वास्तविक आत्मा सारे भारतवर्ष की आत्मा है। जब मैं चलता हूं तो अनुभव करता हूं कि यह सारा भारतवर्ष चल रहा है। जब मैं बोलता हूं तो मैं भान करता हूं कि यह भारतवर्ष बोल रहा है। जब मैं श्वास लेता हूं, तो महसूस करता हूं कि यह भारत वर्ष श्वास ले रहा है। मैं भारतवर्ष हूं, मैं शंकर हूं, मैं शिव हूं"। स्वदेश भक्ति का यह अति उच्च अनुभव है। और यही व्यावहारिक वेदान्त है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

*जीवित कौन है ?



आपत्तिकारक—यह भूल भुलैयाँ क्यों बना रक्खी हैं ? ये पेच पेच वाले घेरे किसको फँसाने के लिये हैं ? विचित्र चक्करों में डाला चाहते हो ?

---

*यह उर्दू लेख दूसरा है जो गृहस्थाश्रम के समय सन १९०० में स्वामी राम जी की लेखनीसे निकला था और उर्दू मासिक पत्र (रिसाला अलिफ) के दूसरे नम्बर में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इस लेख का विषय वही है जिस पर स्वामी राम का अमरीका में आत्मविकास (Expansion of Self) के नाम तले व्याख्यान हुआ था, और जो ग्रन्थावली के प्रथम भाग में दूसरे नम्बर पर प्रकाशित भी हो चुका है;तथापि लेखनी और वक्तृता की शैली में बहुत भेद है जिससे लेखनी का भी शब्दशः अनुवाद दे देना पाठकों के लिये आवश्यक समझा गया। मंत्री

राम—प्यारे ! चक्करों से छुटकारा दिलाने को ये घेरे प्रकट किए गए हैं—तुम्हारी दशा दिखाने को ये दर्पण उपस्थित किए गए हैं।

कबूतर को जब बिल्ली पकड़ने आती है, तो वह बेचारा भोला कबूतर अपनी आँखें बंद कर लेता है। मानो ऐसा करने से बिल्ली की दृष्टि से ओझल हो गया है। पर ओझल कहाँ? कबूतर को यद्यपि बिल्ली दिखाई न दे, बिल्ली की आँखें बराबर खुली हैं, चट शिकार कर लेगी। वैसे ही भाई, अपनी शोचनीय दशा को तुम यदि बिसार दोगे तो क्या विपत्ति रूप सर्प के चक्कर से छुटकारा हो जायगा? विरुद्ध इसके सुना होगा कि जंगल में यदि सिंह चीता आदि से सामना आ पड़े, तो वह व्यक्ति बच निकलता है जो सिंह आदि से नेत्र-युद्ध (टकटकी लगाकर घूरने) में न हारे। इसी तरह संसार में बहुधा अपनी त्रुटियों और अपराधों पर विचार पूर्वक दृष्टि टिकाने (retrospection) में झट उनसे निवृत्ति की विधि निकल आती है। पाठक! आज अपनी-अपनी दशा पर विचार करना होगा।

आपत्तिकारक—अजी! इस पेचीदा निबंध को पढ़कर कौन मस्तिष्क चक्कर में डाले? आप ही इसे लिखो और आप ही पढ़ो; दूसरे को इससे क्या सरोकार? इस तरह आपका अद्वैत खूब सिद्ध होगा (ठीक उतरेगा)।

राम—निस्संदेह "रहनुमा अज पेचो-तावस्त ईं रहे-पेचीदा रा" (इस पेचीले मार्ग का मार्गदर्शक ही स्वयं पेच और ताव में है)। पर भई! आप ही लिखने और आप ही पढ़ने की तो एक ही कही—

खुद कूज़ा ओ खुद कूज़ागरो खुद गिले-कूज़ा ।

अर्थ—आपही वर्तन, आपही वर्तन वनानेवाला, और आपही वर्तन की मिट्टी हूँ ।

शागिर्द हैं तो हम हैं, उस्ताद हैं तो हम हैं ।

हमारे स्वरूप की एकता में कभी अंतर नहीं आसकता । स्पष्टतः यद्यपि सहस्रों और लाखों मनुष्य इस निवन्ध के पढ़ने वाले हों, फिर भी एक राम ही सव में रहनेवाला है, सव से समवाय-संबंध रखनेवाला है, स्वयं लिखता है, स्वयं पढ़ता है, और स्वयं निवंध (मज़मून) वनता है, और पढ़ कर स्वयं ही आनंदित होता है ।

हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु । अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो ३ ऽहमन्नादो ३ ऽहमन्नादः । अहꣳ श्लोककृदहꣳ श्लोककृदहꣳ श्लोककृत् । (यजु० तैत्तिरीयोपनिषद् भृ० व० अ० १०)

अर्थ—आहा ! आहा ! आहा ! मैं अन्न (ज्ञेय-Object) हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ । मैं अन्न खानेवाला (ज्ञाता-Subject) हूँ, मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ । मैं कवि (अन्न और भोक्ता को मिलानेवाला) हूँ, मैं कवि हूँ, मैं कवि हूँ । अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय मैं ही हूँ ।

अलिफ़ के अर्थ हैं "हज़ार", तिसपर भी अलिफ़ एक (।) ही है । सागर में लाखों तरंगें होने दो, सागर की एकता में अंतर नहीं आ सकता । मेरे अपना आप आपत्तिकारक महाशय ! यदि इन गोल चक्करों से वचने के लिये इस निवंध से उपेक्षा करना चाहते हो, तो वताओ तो सही कि पहले इस संसार-चक्र के चक्करों से रक्षा का कोई उपाय निश्चित कर चुके हो ? पहले तो आपका नेत्र ही गोल है, चक्कर है, फिर आकाश की ओर दृष्टि डालो, तो वह गोल चक्कर है । सूर्य,

चंद्र, तारक सब गोल हैं (चक्ररूप हैं)। समधरातल वा सीधी रेखा (Straight line) जिसे कहते हैं, वह आधुनिक काल के गणितज्ञों के अनुसंधान की दृष्टि से एक अति विस्तृत वृत्त है, बहुत ही चौड़ा चक्कर है, जिसका केंद्र अनंत व्यवधान (दूरी) पर है। सेंट आगस्टन के कथनानुसार

God is like a circle whose centre is everywhere but circumference nowhere.

"ईश्वर एक वृत्त है जिसका केंद्र तो है सर्वत्र, किंतु वृत्तरेखा कहीं नहीं।" ऋतु की (monsoon) और व्यापारिक वायु (trade wind) विपुवत्‌रेखा (equator) की ओर चलती हैं, हल्की बनकर ऊपर उड़कर ऐंटी-मानसून (Anti-monsoon) और ऐंटी-ट्रेड-विंड (anti-tradewind) के नामों से नामित हो लौट जाती हैं, फिर सर्दी से नीचे उतर विपुवत्‌रेखा की ओर मुख करती हैं; यों हर समय चक्कर में लगी हैं, चक्कर प्रकट करती फिरती हैं। समुद्र के ज्वारभाटा की गति का यही हाल है, जैसा कि गल्फस्ट्रीम (Gulf Stream) और ऐंटी-गल्फस्ट्रीम (anti Gulf-stream) के नाम ही स्पष्ट करते हैं। नदियाँ बेचारी रहट के टिंडों की तरह चक्कर में लगी हैं, पहाड़ों से उतरती हैं, बड़े परिश्रम से भूतल-वृत्तखंड (क़ौसे-नज़ूली) पार करके समुद्र तक पहुँचती है, वहाँ से वाष्प के स्वरूप में ऊपर आकाशी-वृत्तखंड (क़ौसे-सऊदी) पार कर के पहाड़ों तक लौट जाती हैं और पूरा चक्कर बनाती हैं। घड़ी की सुइयाँ XII (बारह) से चलती हैं, और I (एक) II (दो) आदि सब निवेश स्थान पार करके फिर XII (बारह) पर आ जाती हैं। उनके भाग्य में दिन-रात इसी

चक्कर की क़ैद रक्खी हैं। इसी साइक्लिक आर्डर (cyclic order) काल-चक्र में पड़ी चक्कर खाती हैं।

इसी प्रकार "सवेरा, दोपहर, शाम और रात" काल-चक्र के पेच में लुढ़क रहे हैं। वसंत, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत उसी टाइम के फ़्लाई-ह्वील (flywheel) या चक्र पर धावमान हैं। सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग अस्तित्व (existence) के सर्कस (circus) क्रीड़ा-चक्र में यह चारों उचकते फाँदते (घोड़दौड़ मचाते) संसाररूपी धूलि उड़ाते चक्कर लगा रहे हैं। स्वयं भूमि परिक्रमा में है। चंद्रमा इस घूमने के कारण पीला हो रहा है। सब नक्षत्र किसान की घुमानी की तरह घुमाए जा रहे हैं। ध्रुव तारा प्रकृतिमाता के चक्र (Spinning wheel) में तकले का सिरा बन अपने आप में चक्कर खा रहा है। समुद्र इस गति के कारण कोलाहल मचा रहा है। वायु इस चक्र में ठंढी साँसें खींच रहा है। विपत्तिग्रस्तों के घरों में जो द्यौ उपद्रवी (दैव विरोधी) कहलाता है, वह द्यौ इस दिनों के फेर (काल-गति) की आँखें देखकर तारा रूपी शोक भरी दृष्टि चारों ओर डाल रहा है।

हवा नहीं है, ये नेचर की सर्द आहें हैं।
सितारे कब हैं? ये हसरत-भरी निगाहें हैं॥

निदान कहाँ तक इस चक्कर के अत्याचार लिखें? जीवन स्वयं भी तो अस्तित्व-सागर में एक भँवर (चक्कर) है। कुछ-काल अस्तित्व-नद (अधिष्ठान, Noumenon) के तल पर जीवन का भँवर विहार बनाता है, फिर मिट जाता है।

यदि जन्म-मरण की चक्की से मुक्ति चाहते हो, तो इस वृत्तवाले निबंध को ध्यान और धैर्य से पढ़ो। धीरज के साथ चुपके चुपके हम से बातें करते हुए पहले कुछ टेढ़ी खीर

वाले पृष्ठों की यात्रा पार कर जाओ, फिर सीधी पगडंडी दृग्गोचर होगी, सत्य मार्ग दिखाई पड़ेगा। देखना! कहीं इन छोटे-छोटे घेरों के फंदे में ही फँसे न रह जाना?

वृत्त के घेरे अर्थात् (phenomena, नाम रूप) पर जब तक दौड़ धूप (परिभ्रमण) रहेगा, विरोध और झगड़े-बखेड़े कदापि शांति (peace) का रूप नहीं पकड़ेंगे। यदि (distracations) चित्त के विक्षेप (खेंचातानी) और चिंताओं से छुटकारा पाना मंजूर है, तो केंद्र अर्थात् (noumenon, स्वरूप) की ओर मुख करो, उपनिषद् विद्या पढ़ो, जहाँ सब भेद मिट जाते हैं, भिन्नता भाग जाती है। बाहरी (अपरा) विद्याएं लैंटर्न (lantern) के प्रकाश के सदृश हैं। यह प्रकाश आस-पास की वस्तुओं को किसी अंश में जगमगा अवश्य देता है, किंतु उसका वृत्त सदैव अँधेरे के वृहद् वृत्त से घिरा होता है। प्रकाश जितना बढ़ेगा, अंधकार का वृत भी उतना ही वृद्धि कर जायगा। यूनानी लोग पानी को तत्त्व (Element) स्वीकार करते थे। आज कल के विज्ञान ने पानी को कई तत्त्वों से युक्त बताकर उसकी जगह आक्सीजन और हाइड्रोजन को तत्त्व सिद्ध कर दिखाया। जहाँ पहले एक (पानी) अज्ञात (विज्ञतव्य) था, अब दो (आक्सीजन और हाइड्रोजन) अज्ञात निकल पड़े। विद्या अवश्य बढ़ी, किंतु साथ ही उसके अज्ञान का वृत्त भी विस्तीर्ण हुआ। बाहरी विद्याओं में इधर न्यूटन के ज्ञात-तत्त्वों की प्राप्ति होगी, उधर अविज्ञात वस्तुओं का सागर ऐसा तरंगाकुल हो जायगा कि उन ज्ञात-तत्त्वों को केवल किनारे के कंकड़-सीप आदि से तुलना देना पड़ेगी।

Empirical science (रूप-गुण-विज्ञान) का दुःशासन प्रपंच (संसार) रूपी द्रौपदी के आवरण (चीर), उतारना

चाहता है, एक तह उतरने नहीं पाती कि दूसरी उपस्थित हो जाती है, वह उतरते ही तीसरी उपस्थित हो जाती है—इत्यादि; और दुःशासन बेचारा घबराकर कह उठता है—"नारी में साढ़ी है कि साढ़ी में नारी है ?"

Veil after veil will left and there
will be veil after veil behind.

सर आइज़क न्यूटन ने एक बेर अपने घर में पँखा लगाया। एक अद्भुत लक्ष्य से लीवर और चक्र आदि को तरतीब देकर पँखाकुली पालतू चूहों को नियत किया। वह यों कि दांतों वाले एक पहिए (toothed wheel) के सिरे के निकट थोड़े से गेहूँ इस विधि से रक्खे कि पहिए के चलने फिरने से गेहूँ न हिलने पावें। चूहा गेहूँ को लेने की कामना से जब एक दाँत से उछल कर दूसरे दाँत की ओर जाता तो पहिया फिर जाता, पँखा हिल जाता, किंतु ग़रीब मज़दूर (चूहा) फिर अपनी पुरानी जगह पर नीचे गिर जाता और गेहूँ से उतने ही अंतर पर रहता जिस पर पहले था। वह भोंदू (dupe) फिर उछलता, पँखा हिला देता, किंतु आप कुछ न पाता, इत्यादि। हाँ, यह विचार उसे प्रतिक्षण रहता कि "लो, यह गेहूँ मिला, वह मिला, अब मिला कि मिला, एक बेर और उछलने की देर है, तत्काल पालूँगा।" इसी प्रकार संसार की चाह अथवा सांसारिक विद्याओं की चाह भोले चूहे के समान कभी अपने मनोरथ को नहीं पा सकती, कभी शांत नहीं हो सकती, वास्तविक तत्त्व (Truth) को कभी छू नहीं सकती। यद्यपि इतना अवश्य है कि इसकी कृपा से ठाठी ईश्वर भगवान् का पँखा हिलता जाता है।

सूर्य के प्रकाश के स्पैक्ट्रम (Spectrum–सप्त रंजन व रश्मिवर्ण) में काली लकीरें (dark lines) हुआ करतीं

हैं, किंतु सूर्य-ग्रहण के अवसर पर स्पेक्ट्रम को देखें, तो ये लकीरें श्वेत दृष्टिगोचर होंगी। ठीक उसी तरह प्यारे पाठक! ये रेलें, तोपें और बिल्लोनें जो अविद्या रूपी ग्रहण के समय सफ़ेद तारें (प्रकाशमान) मालूम देती हैं, ग्रहण हटने पर देखी जायँ तो काली धारियाँ बन जायँगी।

बकूए-मयफ़रोशानश ब जामे बर न मे गीरंद।
ज़हे सज्जादहे-तक़्वा कि यक सागर न मे अरज़द॥
कुलाहे-ताजे-सुलतानी कि बीमे-जाँ दरो दरज स्त।
कुलाहे- दिलकश स्त अम्मा ब दर्दे-सर न मे अरज़द॥

अर्थ—यह अद्भुत संयम (तप) का उपासनासन है कि (प्रेम के) एक प्याला के बदले भी नहीं बिकता, क्योंकि मद्य-विक्रेताओं (ज्ञानियों या तत्त्वविदों) की गली में उस (सांसारिक व्रत, नियम वा संयम) को एक प्याले के बदले भी नहीं लेते हैं, अर्थात् सत्पुरुषों के समक्ष बाह्य संयम या सांसारिक उन्नति कुछ सम्मान नहीं रखती। बादशाही-ताज की टोपी, जिसमें कि प्राण का भय है, यद्यपि चित्ताकर्षक है, किंतु शिरपीड़ा के बदले भी नहीं बिक सकती, अर्थात् इस बहुमूल्य ताज से शिर-पीड़ा (बेचैनी) भी दूर नहीं हो सकती।

What shall it profit a man if he shall gain the whole world but lose his own soul.

"यदि आत्मा को बेच कर किसी ने समस्त संसार को प्राप्त कर लिया, तो क्या लाभ!"

इसमें कुछ संशय नहीं कि सांसारिक विद्याओं के ज्ञाता सांसारिक ख्याति के आकाश पर तारा होकर चमकने के योग्य हैं, और अंधेरी रात में कई भूले भटकों को मार्ग-लुप्त करने से बचाते हैं, और अपने प्रकाश से यात्रियों को कीचड़ में फँस जाने या गड्ढे में गिर जाने से हटाते हैं। यह सब

कुछ तो ठीक, किंतु ज्ञान का सूर्य उदय होने पर तारे-वारे सब लुप्त हो जाते हैं, उनकी कुछ भी शक्ति नहीं रहती।

दुनिया व आक़बत बना, वाह वा जो जहल ने किया।
तारों सा मिहरे-राम ने दम में उड़ा दिया कि यों॥

अय भारतवासियों ! अँधेरे कमरों में घुसकर अँधेरी रात की उपयुक्त आतिशबाज़ियों और कृत्रिम झाड़-फ़ानूसों के द्वारा सजावट बनावट करना तो तुम विदेशियों से सीख ही रहे हो, किंतु हाय ! अपने देश के दिवाकर (ब्रह्मविद्या) को मुँह दिखाने से भी परहेज़ किया जाता है।

वृत्त—आओ, अब तनिक इन वृत्तों के तत्त्व पर विचार करें। इस अवसर पर उचित मालूम होता है कि वे पारिभाषिक शब्द जो बेर-बेर इस प्रबंध (मज़मून) में आवेंगे, उनकी भी कुछ व्याख्या की जाय।

परिभाषा—वृत्त (circle-दायरा) उस गोलाकार को कहते हैं जो एक रेखा (गोल लकीर जिसको कि परिधि (circumference या 'मुहीत" कहते हैं) से घिरी हुई हो, और जिसके बीच में एक ऐसा बिंदु (केंद्र, centre या मर्केज़ नामक) हो जिससे चाहे कितनी ही रेखायें (लकीरें) परिधि तक खींची जाएँ, सब परस्पर समान हों। इन परस्पर समान लकीरों में प्रत्येक को अर्धव्यास (त्रिज्या, radius) कहते हैं।



वृत.

वृत्त यदि अत्यंत छोटा हो, अर्थात् उसका अर्धव्यास यदि अत्यन्त दर्जे तक सूक्ष्म हो, तो इस दशा में वृत केवल एक बड़ा विंदु (point-नुकता) सा बन जायगा, जैसे इस निबन्ध के पहले पृष्ठ पर की शकल में सब से छोटे वृत्त का केंद्र ह, य के बहुत निकट है; अर्थात् अर्धव्यास ह य बहुत छोटा है, इसीलिये ह वृत्त शून्य वरन् विंदु सा बना हुआ है। फिर ज्यों ज्यों य से केंद्र की दूरी बढ़ती जायगी, अर्धव्यास लंबा होता जायगा, और वृत्त चौड़ा होता जायगा। पहले पृष्ठ की शकल में दूसरे वृत्त का केंद्र (छोटा) द अधिक अंतर पर गया, तो वह वृत्त द भी बड़ा। इस वृत्त में ह जैसे कई वृत्त आ जाते हैं। तीसरे वृत्त का केंद्र (छोटा) ज और भी दूर गया, तो साथ ही उस वृत्त का राज्य भी फैल गया, यहाँ तक कि इसमें द जैसे कई वृत्त समा सकते हैं।

इसी धारणानुसार व वृत्त (जिसके केंद्र छोटे व ने पग और भी आगे बढ़ाया) इस उन्नति को पहुँचा कि ज और द और ह जैसे कई वृत्त उसमें खप जाने की गुंजाइश हो गई।

परिणाम—परकार का केंद्र-विंदु ज्यों ज्यों दूर रक्खा जायगा, वृत्त का विस्तार बढ़ता जायगा।

यहाँ पर एक और बात पर भी दृष्टि पात करना उचित होगा। इन वृत्तों पर एक विचार की दृष्टि डालियेगा। य स्थान सब वृत्तों के लिये सांझा (मुशतरका) है, और अ य आ सब वृत्तों की स्पर्श-रेखा (tangent-ममास) है। ह वृत सब से छोटा है। द वृत उससे बड़ा। इसीलिये छोटा वृत ह बड़े वृत द के भीतर विद्यमान है।

या यों कहो कि बिंदु **य** के निकट वृत **द** की परिधि सीधी रेखा **अ य** के और वृत **ह** के बीच में विद्यमान है।

इसी बात को अन्य शब्दों में यों कह सकते हैं कि वृत **द** (जो **ह** वृत से बड़ा है) सीधी रेखा **अ य** की ओर वृत **ह** की अपेक्षा अधिक झुके हुए है।

या वृत **ह** की अपेक्षा बड़े वृत **द** का लगाव सीधी लकीर **अ य** की ओर अधिक है।

और छोटे वृत की अपेक्षा बड़े वृत का सीधी रेखा से (टेढ़ापन वक्रता) कम है।

अर्थात् (दूसरे शब्दों में) वृत **द** जो बड़ा है, उसकी वक्रता (खम, टेढ़ापन, curvature) छोटे वृत **ह** की वक्रता की अपेक्षा कम है, और **य** बिंदु के निकट बड़ा वृत छोटे की अपेक्षा सीधी रेखा से अधिक अनुरूप है। इसी प्रकार **ज** वृत की वक्रता (curvature) **द** वृत की वक्रता से भी कम है, और **ज** वृत **द** से भी अधिक सीधी रेखा की सादृश्यता रखता है। इसी प्रकार से वृत **व** वृत **ज** को भी मात कर गया है।

परिणाम—स्थान **य** पर एक गुणा आलिंगन के लिये अपने बाहुओं को दहिने बाएँ फैला, प्रेम का वृत ज्यों ज्यों बढ़ेगा, त्यों त्यों उसकी परिधि सीधी-रेखा से अधिक अनुरूप होती जायगी।

इन दोनों परिणामों को मिलाने से यह उपलब्ध होता है कि ज्यों ज्यों केन्द्र आगे को उन्नति करेगा, वृत का विस्तार

अधिक होता जायगा और सीधी लकीर (सीधा मार्ग वा सन्मार्ग) से उसकी तदाकारता (एकता) बढ़ती जायगी।

अंततः केंद्र जब अनंत (infinite) दूरी पर पहुँचा तो वृत के विस्तार की नाप-जोख करना मानवी शक्ति से परे हुआ। और य के निकटस्थ परिधि के हाल चाल की सुध ली, तो काया पल्टी हुई पाई। सीधा आलिफ़ (I) का स्वरूप दृग्गोचर हुआ, कुबड़ी पीठ अर्थात् वक्रता को लुप्त पाया, और वृत ने लम्बा क़द बनकर ऊँचे सरू समान प्रिया का सौंदर्य दिखाया, अर्थात् केंद्र के अत्यंत दूरी पर चले जाने से वृत सीधी रेखा बना।

उदाहरण—नारंगी गोल होती है। उसके केंद्र में से होता हुआ एक खंड काट लिया जाय, तो सदैव गोल वृत होगा। खरबूज़े को भी (केंद्र से होती हुई सीधी सतह में) चीरा जाय, तो वृत ही लब्ध होगा। एक बड़े हिन्दवाने (तरबूज़) को लो। उसको काटने का कष्ट तो क्या स्वीकार करोगे, उसके ऊपर चाकू को इस प्रकार टिकाओ कि चाकू की नोक सदैव हिन्दवाने की ओर रहे, और फिर उस नोक से हिन्दवाने पर लकीर खींचते जाओ। यह लकीर भी एक वृत की परिधि होगी, किंतु खरबूज़ा वाले वृत से यह बड़ा होगा, क्योंकि हिंदवाना स्वयं खरबूज़े से बड़ा होता है।

अब पृथिवी भी तो नारंगी, खरबूज़ा या तरबूज़ की तरह गोल ही मानी गई है। अंतर है तो इतना कि पृथिवी इन की अपेक्षा बहुत ही बड़ी है, इस लिये किसी ऊपर के ऊर्ध्वाधार धरातल (vertical plane) में चलते २ तरबूज़ की तरह धरती पर भी एक लंबी रेखा खैंचते जायँ, तो गणित शास्त्र के मत से यह रेखा सीधी रेखा न होना चाहिए, वरन् एक

वृत्त का खंड (या धनुष) होना चाहिए। और जिस प्रकार हिंदुस्तान आदि पर खिन्ची हुई कोई भी रेखा सीधी रेखा नहीं होती, गोल ही होती है; इसी प्रकार भूमि पर चाहे किसी भी प्रकार से रेखा खींची जाय, बिलकुल सीधी कभी नहीं होना चाहिए, गोल ही होगी।

आपत्तिकारक—क्या अच्छी कही, ऐसा क्यों न होगा? यह तो बच्चा भी बता देगा कि भूमि पर सीधी लकीरें खिंच सकती हैं, बताने का तो क्या चर्चा है, अभी खींचकर दिखा देगा, और सब लोगों का अनुभव इस बात का साक्षी है कि सड़कें और बाज़ार सीधे हुआ करते हैं; यह विचित्र बुद्धि का अजीर्ण है जो आप आदेश करते हैं कि "बाज़ार धन्वाकार हैं, लाहौर की सब सड़कें वृत्तों के खंड हैं"। बचपन में सुना करते थे यह कहावत कि "अब्बा ज्यों का त्यों कुनबा डूबा क्यों"।?*

यहांपर वही कहावत ठीक फबती देख ली। पढ़ पढ़ कर

*नोट—किसी को जाड़े की ऋतु में परिवार-सहित नदी पार उतरना था। पहले तो उसने स्वयं अकेले ही लाठी हाथ में ली और नदी की गहराई को स्थान स्थान से जाकर नापा। फिर बहुत समय खर्च करके त्रैराशिक (Rule of three, अरबा) आदि गणित के नियमों की सहायता से गहराई का मध्यमान (औसत) ज्ञात किया। तदनंतर अपनी ऊँचाई को और अपने स्त्री-पुत्रों की ऊँचाई को मापा। और समस्त कुटुंब के लिये ऊँचाई के मध्यमान (औसत) को अनुमानतः निकाला। यह ऊँचाई का मध्यमान नदी की गहराई के मध्यमान से अधिक पाया गया, और इसी ऊँचाई के भरोसे बाल बच्चों को लेकर बेधड़क नदी में उतर पड़ा। अब यद्यपि गहराई का मध्यमान तो उन सब के शरीरों की लंबाई के मध्यमान से कम था किंतु नदी के किन्हीं किन्हीं स्थानों पर पानी बहुत गहरा था; वहाँ तक पहुंचे तो बच्चे बिचारे लगे डूबने।

भी तो मस्तिष्क कैसे प्रकीर्ण (परिभ्रष्ट) हो जाते हैं! ठीक है, इसही मस्तिष्क-विकृति (परेशानियें-दिमाग) के कारण तो ये लोग अच्छे भले प्रत्यक्ष दिखाई देते संसार को मिथ्या निश्चित कर दिया करते हैं, और सब ब्रह्म ही ब्रह्म बताया करते हैं, और ऐसे निरर्थक वाक्य बोला करते हैं।—

बसकि दर चश्मो-दिलम हर लहज़ा ऐ यारम तूई।
हरचे आयद दर नज़र अज़ दूर पिंदारम तूई॥

अर्थ—मेरे नेत्रों और हृदय में हर समय ऐ यार! तू ऐसा बसा हुआ है कि जो कुछ मुझे दूर से दिखाई देता है मैं ख्याल करता हूँ कि तू ही है।

बेगाना गर नज़र पड़े तू आशना को देख।
बंदा गर आए सामने तो भी खुदा को देख॥

राम—प्यारे! पहले हमारी पूरी बात तो सुन ली होती, फिर आप रोष भी प्रकट कर लेते। तेज़ी (तीव्रता) तनिक न करो, इस तीव्रता के कारण बुद्धि के पैर अवश्य फिसलेंगे। हम जानते हैं आज इन साधारण गणित के प्रश्नों से आंखें घिसाते २ आप थक गए हैं, और इसी लिये भवें चढ़ाए हुए हैं, किंतु आप को यह एक बेर स्मरण दिलाया जाता है कि आप उस देश के रहने वाले हैं जहां से गणित का सूर्य उदित हुआ, आप उन ऋषियों की संतान हैं जिनके लिये तत्त्व-विचार, तत्त्व-चिन्तन, high thinking ही भोजन पान (meat and drink) था। और पूर्ण आशा की जाती

उस समय हमारे पाश्चात्य गणितशास्त्रज्ञ महाशय को बच्चों के डूबने मरने का तो कुछ शोक हुआ था नहीं, नहीं कह सकते; पर हाँ अपने हिसाब के उत्तर पर अत्यंत विस्मय हुआ कि अहो आश्चर्य "अरबा ज्यों का त्यों, कुनबा डूबा क्यों?"।

है कि भविष्य में अत्यंत सूक्ष्म और जटिल प्रश्नों का सामना करते भी आप घबराएँगे नहीं। लो सुनो, भूमि पर जो रेखाएँ और लकीरें खींची जाती हैं, वस्तुतः वे धनुष और वृत्त के खंड ही होते हैं; मगर क्योंकि समस्त पृथवी एक अति बृहत् गोला है, इस लिये भूमि पर की ये रेखाएँ बहुत बड़े वृत्त के खंड होती हैं, और इसी कारण ये रेखाएँ सीधी लकीरों के सदृश दिखाई देती हैं।

पृथिवी-तल पर मनुष्य का चलना-फिरना ऐसा है जैसे मिट्टी के किसी भांडे (गोल बर्तन अर्थात् ठलिया या घड़ा) के तल पर चींटी का रेंगना। भूमि के जिन वृतों के खंडों पर मनुष्य चलता फिरता है, उन वृतों का केंद्र लगभग चार हज़ार मील की दूरी पर होता है। फिर वह वृत-खंड सीधी रेखाओं के रूप में क्यों न दृग्गोचर हो ? यह बात इस सिद्धांत का व्यावहारिक प्रमाण है कि जिस वृत का केंद्र अत्यंत दूरी पर जायगा, वह सीधी रेखा बन जायगा।

ऐ प्यारे ! वृत का सीधी रेखा बन जाना जिस प्रकार गणितज्ञ लोग निश्चित करा देते हैं,उसी तरह तनिक धैर्य और शांति से काम लिया तो आपको बेगाना (अजनबी, पराया) का आशना (मित्र, सखा, अपना) बनाना और बंदे (जीव) का ख़ुदा (ईश्वर) बन जाना भी अवश्य निश्चित हो जायगा।

जिस प्रकार संसार के नाशमान बखेड़ों में हिम्मत (साहस) नहीं हारते, इधर (भीतर की ओर) भी कटिबद्ध होकर ध्यान दिया तो अक्षय जीवन मिलेगा, नित्यानंद पाओगे।

क़तरा बिगरीस्त कि अज़ बहर जुदायेम हमा।
बहर बर क़तरा बखंदीद कि मायेम हमा॥

चहक़ीक़त दिगरे नेस्त खुदायेम हमा।
लैक अज़ गरदिशे-यक नुक़्ता जुदायेम हमा॥

अर्थ—बिंदु रोया कि हम सब समुद्र से भिन्न हैं, और समुद्र बिंदु पर हँसा कि हम सब पानी हैं। वास्तव में कोई दूसरा नहीं, हम सब खुदा हैं, किंतु एक बिंदु के एर फेर से हम सब खुदा (خدا) से जुदा (جدا) हो गए हैं।

जीवन—की सामान्य पहचान (characterestic) है गति (चेतनता, energy)।

जीवित मनुष्य (बाहुबल से) सब कुछ कर सकता है, कोठे पर चढ़ता है, गड्ढों में उतरता है, उछलता है, कूदता है, दौड़ता है, वरन् अपने बल से निकटस्थ वस्तुओं को गतिशील करता है। मृत-मनुष्य का न हाथ हिल सकता है, न पैर, न आँख कान और न कोई अन्य अंग; उसकी नाड़ी गति नहीं करती, उसकी साँस गति नहीं करती। और क्योंकि मृतक से किसी प्रकार की गति प्रकट नहीं हो सकती, उसमें जीवन का नाम और चिन्ह भी नहीं होता।

जीवित पशु आप चलता है। बग्घी रथ आदि को चलाता है, किसान का पुर (रहट) चलाकर खेतों को सिंचित करता है, अरब के मरुस्थल में इतना काम आता है कि "जंगल का जहाज़" नाम पाता है। बंगाल के कुछ वनों में जब उच्च स्वर से गरजता है, तो बनके समस्त पशुओं को चहुँ ओर दौड़ा देता है, तीक्ष्ण गति में डाल देता है। मृत पशु बिचारा स्वयं गति करना या औरों में गति डालना तो एक ओर रहा, कुत्तों, चीलों तनिक-तनिक से (जीवित) कीड़ों की खुराक (आहार) बन जाता है।

जीवित वनस्पतियाँ बढ़ती हैं, फैलती हैं, शाखाएँ छोड़ती हैं, और बीज उत्पन्न करती हैं, जिनकी बदौलत अपने जाति वाले वृक्षों से भूमि को मालामाल बनाती हैं; तात्पर्य यह कि गति करती हैं और गति से अभिवृद्ध पाती हैं। मृत वनस्पति (काटे हुए वृक्ष आदि) क्या बढ़ेंगे ? क्या उन्नति करेंगे ? उनमें गति प्रकट होती तो मृत क्यों होते ? "गति" (energy) का प्रकाश (आविर्भाव) विविध प्राणियों में विविध प्रकार का है। थोड़ा विचार करने से ज्ञात होगा कि सृष्टि में खनिज वर्ग, वनस्पति वर्ग, प्राणिवर्ग और मनुष्य वर्ग में ऊँचे नीचे पद गति के माप (तराजू) में तोलकर नियत किए गए हैं। जीवन की (उच्च, नीच) श्रेणियाँ सब गति ही की माप से परखी जाकर निश्चित हुई हैं, और गति ही की कसौटी में मनुष्य को समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ ठहराया है।

जड़सृष्टि (खनिज वर्ग) सामान्य ख़याल के अनुसार मनुष्य, पशु या वनस्पति की तरह अपने आप कोई गति नहीं कर सकती; न बढ़ती है न संतति उत्पन्न करती है, न चलती फिरती है, न उछलती कूदती है, बल्कि बिलकुल जड़ (inert) है। यदि बाह्य शक्तियों के वशीभूत होकर जड़ वस्तुएँ (पाषाण आदि) एकबेर स्थिर हो जाँय, तो सदैव स्थिर रहेंगी। और यदि बाह्य शक्तियों की बदौलत गति में आजायँ, तो गति में रहेंगी (न्यूटन के पहले गति-नियम के अनुसार)। पाषाण आदि में अपने आप दशा बदलने या किसी प्रकार का गति-प्रकाशन करने की कुछ भी सामर्थ्य नहीं होती। अतः इसीलिये बिलकुल निर्जीव (inorganic) कहलाते हैं, और जीवन की निसेनी (श्रेणी) में सब से निचले पत्थर का दरजा पाते हैं।

कुछ मनुष्यों का कथन है कि पृथिवी वर्ग अर्थात पहाड़, खानें आदि, या अन्य मुख्य २ जड़ पदार्थ अपने आप अपनी दशा बदलने की सामर्थ्य रखते हैं, किन्तु इतना कम कि शताब्दियाँ बीत जाने पर जो परिवर्तन इनमें हो वह सैकड़ों कठिनाइयों से मनुष्य को अनुभव हो सके। इस कथन को सत्य मान कर खनिज वर्ग को विशेषतः यदि हम "जीवन वाले" (जीवित) कह भी दें, तो उनकी भीतरी गति के भावानुसार उनको अधमतम श्रेणी के जीवन वाले मानना पड़ेगा। हाँ! जीवन के परिषद् (दरबार) में वनस्पतियों का तदासीन (प्रविष्ट) होना प्रायः सब कोई स्वीकार कर लेते हैं। खनिज वर्ग से वनस्पति वर्ग की महत्ता (श्रेष्ठता) का कारण जानना चाहो तो ज्ञात होगा कि उनकी भीतरी गति खनिज वर्ग की अपक्षा अधिक प्रभाव (उत्तम स्वभाव) की है। वनस्पति फलते हैं, फूलते हैं, हरे भरे होते हैं, छाया देते हैं, भीनी भीनी सुगंध देते हैं, सुस्वादु मेवा देते हैं, इत्यादि। खनिज वर्ग में इनमें से एक बात भी कहाँ?

जीवन की श्रेणी में पशुओं का दर्जा वनस्पति से ऊपर है। उसका कारण स्पष्ट ही है कि पशुओं की भीतरी गति उत्तम तर स्वभाव (प्रभाव) की है; पशुगण न केवल वनस्पति की तरह दिन प्रतिदिन बढ़ते हैं और मोटे होते हैं, वरन् एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, समुद्र के तल की खबर लाते हैं, आकाश की सैर करते हैं, चहचहाते हैं, गाते हैं। ये बातें वनस्पति को भला कहाँ प्राप्त हैं?

मनुष्य पशुओं पर भी श्रेष्ठता रखता है। इससे संभवतः किसी मनुष्य को इनकार नहीं होगा, चाहे कारण प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात न हो, जो यह है कि मनुष्य में श्रेष्ठतम स्वभाव

(प्रभाव) वाली (भीतरी) संकल्प शक्ति प्रकट होती है। बाहरी शक्ति से पत्थर आदि खनिज वर्ग के अनुसार मनुष्य का शरीर उछाला जा सकता है, और गिराया या फेंका जाना संभव है। वनस्पति के अनुसार मनुष्य का डील डौल बड़ा होता है, शरीर मोटा होता है। पशुओं के समान मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है, दौड़ सकता है, गा सकता है। किंतु इसी पर बस नहीं है, मनुष्य की महत्ता उसकी श्रेष्ठतम भीतरी गति (चेतनता) पर निर्भर है, जो सृष्टि में और कहीं नहीं पाई जाती, जिसके कारण मनुष्य रेल को यह शीघ्रता प्रदान करता है कि महीनों की मंज़िलें घंटों में वह पार कर जाती है, जिसकी बदौलत शीघ्रगामी बिजली को चपरासी बना हज़ारों कोसों पर बैठे हुए मित्रों के समाचार सिकंडों में मँगा सकता है, और तेज़गामी वायुयान (विमान–Balloon) तयार करके वायु की पीठ पर एक प्रकार से ज़ीन पालान जमा सकता है, जिसकी बदौलत एक स्थान पर बैठे बिठाए महाकाश की सैर कर आता है, और चंद्रमा, सूर्य, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र आदि आकाश के नक्षत्रों की दशा को पहुँच जाता है। निदान, मानवी जीवन को श्रेष्ठता देनेवाला मनुष्य के भीतर चेतनता का स्रोत है। देवतागण अपने भक्तों के विचारानुसार इस प्रकार के जीवन वाले हैं कि जहाँ चाहें तत्काल उपस्थित हो जाते हैं, अभी आकाश पर थे, अभी किसी के स्मरण करने से भूमि पर आ उपस्थित हुए। भूत, भविष्य और वर्तमान के regions (प्रदेश या मंडलों) में बिना रोक टोक प्रवेश कर सकते हैं। मन से भी अधिक गतिवाले हैं। उनकी गति श्रेष्ठतम होने के कारण वे मनुष्य से भी श्रेष्ठतम जीवन वाले हैं।

परिणाम—जीवन का प्रमाण "आंतरिक गति का प्रकाश"।

है, और इस गति के उतम या अधम प्रकार पर जीवन का उतम या अधम होना निर्भर है।

मानवी रूप में जड़ (खनिज वर्ग)-डाक्टरों ने सिद्ध किया है कि जब मनुष्य माँ के पेट में होता है, उसका शरीर श्रेणी-क्रम से कई छोटे २ पशुओं का रूप धारण करता है। सब से अंत में मनुष्य का रूप धारण करता है। अतः कैलग (Kellogg) साहब जैसे सुप्रसिद्ध डाक्टर का कथन है।

During the period of pregnancy, the ovum undergoes a most remarkable series of changes, passing through various stages of development, in some of which it resembles in the most wonderful degree vareous lower forms of animal life. At one period, the developing human being, technically called a foetus, resembles not very remotely a partially developed chick from an egg which has been incubated for a few days. At another period the resemblance of the foetus to that of a dog of different age is so great that any but an experienced physiologist might readily be deceived. At one time; the extremities of the foetus resemble very closely the stunted flippers of a seal or walrus. At a certain period, its body is entirely covered with hair, like its near relative in the animal kingdom, the ape.

अर्थ—गर्भ के दिनों में मानवी भ्रूण में लगातार अत्यंत अद्भुत परिवर्तन होते हैं, और वह विकास (संवर्धन) की विभिन्न श्रेणियों में से गुज़रता है। कुछ श्रेणियों में तो वह अत्यंत विस्मयकारक सीमा तक पशु जीवन के तुच्छ जीवों के सदृश्य होता है। यह क्रमशः विकास को पानेवाला (या अभिवृद्धि करने वाला) मनुष्य, जो परिभाषा में फीटस नाम से नामित होता है, एक समय ऐसे अधूरे मुर्गी के बच्चे से जो कुछ दिन ही से सिहा गया हो बहुत कुछ मिलता जुलता है; दूसरे काल में उसकी सदृश्यता विभिन्न आयुवाले कुत्तों से इस प्रकार अधिक होती है, कि सिवाय अनुभवी डाक्टर के और सब उसकी पहचान करने में धोका खा जाते हैं; एक और काल में उस भ्रूण के सब सिरे सील या वालूरस (Seal or Walrus) मछली के ठिठरे हुए परों से बहुत ही ज्यादा मिलते जुलते हैं; एक विशेष काल में उसका शरीर बालों से बिलकुल ढका हुआ होता है जैसा कि पशुओं में उसके निकट के संबंधी बंदर का ढका हुआ होता है। (डाक्टर कैलग)

कुछ कोमल-स्वभाव महाशयों को तो डाक्टर कैलॅग साहब का यह लेख भी अप्रिय प्रतीत हुआ होगा। क्योंकि इस लेख से उनके पवित्र मानवी चोले का पाशवी चोले के साथ बहुत बड़ी समता रखना सिद्ध होता है। किंतु हाय! बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि उत्तम मनुष्या देह के भीतर खनिज के जीवनवाले, वनस्पति के जीवन वाले और पशु जीवन वाले बहुलता से विद्यमान हैं, अधिकता से पाए जाते हैं। हाँ, यह हर्ष की बात है कि मनुष्य-तन में मनुष्य भी अवश्य होते है, किंतु तिल-तिल; और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि मानवी चोले में देवते भी मिला करते हैं, यद्यपि अति विरत।

पहले उल्लेख हो चुका है कि पत्थर की ठीकरी आदि (खनिज वर्ग) का स्वभाव जड़ता (inertia) है। अपने आप अपनी दशा वे तनिक नहीं बदल सकते। उनकी स्थिति-गमन का कारण बाह्य शक्तियें हुआ करती हैं। इन बिलकुल निर्जीव खनिज पदार्थों में मोती, लाल, रुपया, हीरा आदि भी सम्मिलित हैं, जिनको अत्यंत मूल्यवान् माना जाता है। तीर, तलवार बंदूक़ और तोप के गोले भी जड़ निर्जीव और गतिहीन खनिज वर्ग में सम्मिलित होते हैं; यद्यपि दूसरों से चलाए जाकर ये शस्त्र बड़े २ बलवान् वीरों को निर्जीव कर देने की शक्ति रखते हैं, किंतु निर्जीव खनिज वर्ग को न तो हीरे, मोती के रूप में कमाल (पूर्णपद) प्राप्त होता है, न ताज और तोप के रूप में, वरन् पवित्र नर-स्वरूप में। इस देवदुर्लभ मानव रूप में खनिज (जड़) स्वभाव प्रकट होकर राजदरबार के चाटुकार (खुशामदी) और सतवचनिये बन अपने पिठलगों (सम्बन्धियों) को उस टिकिया की तरह गोल गोल श्वेत श्वेत वस्तु (रुपया) से भी अधिक प्रिय होते हैं, और अन्य शक्तियों से तीर व तोप की तरह चलाए जाकर विचारे घायल भारतवर्ष को और भी अधिक घायल करते हैं। निस्संदेह वे महाशय जो केवल आभूषणों (mere ornaments) का काम देते हैं, किंतु भीतरी (वस्तुतः) जान नहीं रखते (जिसकी बदौलत बाहरी प्रभावों का सामना किया जाता है, बाह्य वस्तुओं से काम लिया जाता है, और जिसकी बदौलत वास्तविक उन्नति की जाती है), वह यदि खनिज स्वभाव के जीवन वाले नहीं हैं तो और क्या हैं? इनमें नाम को भी faith in self (अपने ऊपर विश्वास या सूरमापन) नहीं होता, और न ही उनका कोई विशेष उद्देश या लक्ष्य जीवन में होता है, जिधर की वायु आई, उधर उड़ा ले गई।

आपत्तिकारक—बड़े-बड़े प्रतिष्ठित और महान पुरुषों को गाली देते हो ? तुमपर मान हानि का दावा किया जायगा।

राम—निर्जीव पत्थर चाहे कैसे ही बहुमूल्य हों, नालिश वालिश नहीं कर सकते। और नालिश करेगा कौन ? आतिशी शीशे में मुँह देखते-देखते लकवा दूर हो जाया करता है, वैसेही इस अलिफ़ (।) को पढ़ते-पढ़ते तो उनकी दशा बदल जाती है, उनमें जान आ जाती है, जड़ता दूर हो जाती है, सतवचनियापन उड़ जाता है। कचेहरी तक पहुँचते पहुँचते वादी से प्रतिवादी बन जायँगे, फिर नालिश कैसी ?

जड़-सृष्टि का स्वभाव रखनेवाले मनुष्यरूपा विशेष व्यक्तियों को यदि सजीवन मान भी लिया जाय, तो खनिज वत् उनके जीवन को उस न्यूनतम गति (चेतनता) वाला मानना पड़ेगा जिस गति का होना न होना एक समान है,जिस गति से स्पष्ट कुछ भी उन्नति नहीं होती, जो गति खिलाड़ी बच्चे के घूमते हुए लट्टु में हुआ करती है, जिस dead motion (मृत गति) का centre (केंद्र) छोटे से शरीर के बाहर नहीं होता। इस चेतनता वाले जड़ मनुष्यों के जीवन चक्र को हम (पहले पृष्ठ पर के छोटे से छोटे) हैं वृत से निरूपण (represent) कर सकते हैं,अर्थात् उस वृत से जतला सकते हैं जो इतना अल्प है कि मानो शून्य ही हो गया हुआ है। ये वह महाशय हैं जिनका centre of force (चेतनता का केंद्र) उनके छोटे से तन में ही है। अर्थात् जो अपने प्यारे पेट ही के चहुँ ओर घूमते हैं; जो कुछ करते हैं सब अपने material self (भौतिक शरीर) ही के लिये करते हैं। जिनकी चेष्टा

अपने उदर ही के अर्पण होती है (शिश्नोदर परायणः), जिनका परमेश्वर उनका पेट ही है, धर्म और विश्वास (Religion) स्वार्थपरता है; जिनके यहाँ Temple of God (ईश्वर के मंदिर, शरीर) में कामदेव (शैतान) बेखटके राज्य करता है; जिनके अंधकार से भरे मन-मंदिर को तंग (संकुचित) और अंधकार पूर्ण बिल समझकर उसमें काम क्रोध रूपी नाग (सर्प) रात-दिन फुफकारें मारते हैं, और हलाहल (विष) घोलते रहते हैं। इनको "पेट-पालू" या "उदरपरायण" नाम देना उचित है।

आपत्तिकारक—किसी युग का कोई इतिहास या किसी देश का कोई भूगोल "स्वार्थ-परता" को धर्म (या religion) नाम नहीं देता, किसी धर्मशास्त्र से यह अनोखी बात प्रकट नहीं होती, तुम भी विचित्र मनगढ़ंत (कपोल कल्पित) लटके (शगूफे) उड़ाते हो।

राम—वाह प्यारे! हाँ हाँ! इसी पर क्या इति थोड़ी ही है? "।" (अलिफ़) को पढ़ते रहे तो देखोगे कि समस्त संसार (मैं, तू, यह, वह, सब) राम ही की मनगढ़ंत है।

न नक़्शे-दुई दिल से मिटा दूँ, तो सही।
मख़लूक़ को ख़ालिक़ न बना दूँ तो सही॥
क़तरा न अनलबहर कहे, तो कहना।
आबिद से न माबूद बना दूँ तो सही॥

"धर्म" से मुराद हमारी वह जाति या सम्प्रदाय नहीं है जो मुक़दमाबाज़ी के समय लोग Law Courts (न्यायालयों, अदालतों) में अर्ज़ीदावा पर लिखवाया करते हैं; वरन् 'धर्म' से हमारा अभिप्राय है वह विश्वास जो लोगों के हृदय-पटल

पर अधिष्ठित होकर रक्त के साथ उनके नस-नाड़ियों में उबला करता है; और छाप बनकर उनके समस्त कर्मों और विचारों पर छपता है। वह जीवित शक्ति वा विश्वास (living force) किसी मनुष्य का असली धर्म होती है, जिसके प्रकाश में वह शेष सर्व काम करता है।

The thing a man does practically believe (and this is often enough without asserting it even to himself, much less to others), the thing a man does practically lay to heart and know for certain, that is in all cases the primary thing for him, and creatively determines all the rest. That is his religion. (Carlyle.)

अर्थ—किसी व्यक्ति का जो कुछ व्यावहारिक निश्चय होता है (और यह निश्चय बहुधा करके अपने आप को भी बिना बताए या प्रकट किए के होता है, औरों की तो भला क्या चर्चा) और जिस विश्वास (निश्चय) को मनुष्य व्यवहार रूप में अपने हृदयंगम करता है और दृढ़ निश्चय से जानता है, वह व्यावहारिक विश्वास ही समस्त दशाओं में उसके लिये प्रारम्भक बात होती है, और शेष सब चेष्टाओं और कर्मों को उत्पन्न करता है। ऐसा व्यावहारिक निश्चय ही उस (मनुष्य) का religion (धर्म या ईमान) होता है।

क्या वह परान्न-भोजी भोंदू (मूढ) हिंदू या ब्राह्मण या वैष्णव या आर्य या वेदांती आदि कहलाने-योग्य है जो "चल मेरी लकड़ी रंग बदल जा" का वाक्य है और किसी अँगरेज़ बहादुर या किसी अन्य मत के प्रभावशाली वा तेजस्वी (influential) व्यक्ति के सम्मुख झट अपने (नाममात्र के)

निश्चय से इनकार कर जाता है। भला इतनी सदाचारिक शक्ति (moral courage) तो कहाँ कि अपने विश्वास का शुद्ध शब्दों में इक़रार करते न शरमाए? कितनी अधिक संख्या ऐसे हिंदू-मुसलमान और ईसाइयों की है जो जिह्वा से ईश्वर को सर्वत्र-सर्वव्यापी मानने वाले हैं, सर्वव्यापी वर्णन करते हैं; मंदिरों में, प्रार्थनालयों में, लेक्चरों के समय, और वाइज़ (उपदेश वा कथा) के समय अपना तन मन धन परमेश्वर के अर्पण कर देते हैं, किंतु जब ज़रा स्त्री का, हवेली का, रुपया का, या सुस्वादु भोजन-पान का मुँह देखा, तो हाय! उस शुद्ध पवित्र (pure) परमेश्वर की आँखों में नमक डालकर तन भी उससे छीन लिया, मन भी छीन लिया, कंचन पर, भूमि पर अपने भाइयों से लड़ाईयाँ और मुक़द्दमें आरंभ कर दिए। किसी स्त्री के साथ आँखें चार हुईं, तो सर्वत्र सर्वव्यापक एकमेवाद्वितीयम् परमेश्वर धरा ही रहगया। किसी डिप्टी कमिश्नर साहब या उच्च अधिकारी (शासक) की हाजिरी में यदि होते, तो दीन-हीन बने रहते, मानों मुँह में जिह्वा ही नहीं। किंतु सर्वत्र सर्वदर्शी शासकों के शासक ईश्वर भगवान् जिसको न केवल भारतेश्वर, चीन-सम्राट् या ज़ार रूस का स्वामी जानते हैं, वरन् समस्त भूमि, तारे, नक्षत्र, सूर्य और चंद्र का सम्राट् वर्णन करते हैं, उस सर्वशक्तिमान (omnipotent क़ादरे-मुतलक़) महान् की उपस्थिति में अकर्तव्य और अवक्तव्य बातों के अपराधी होने का साहस पड़ गया। हाय! इस दंभ और पाखंड से भरे हुए हिंदूपन और मुसलमानपन, ईसाईपन या और किसी पन पर तीन हरफ़ (ध. क. र=धिक्कार)!

वाइज़ाँ काईं जलवा बर महराबो-मिनबर मेकुनंद।
चूँ ब ख़िलवत मे र वंद आँ कार दीगर मे कुनंद॥

अर्थ—ये उपदेशक लोग (वाइज़ करने वाले), जो कि मेहराब व मिम्बर (प्लेटफ़ार्म) पर विराजमान होते हैं, जब एकांत में जाते हैं, तो और और काम करते हैं (अर्थात् बाहर में कुछ कहते हैं और भीतर में कुछ करते हैं) ।

किसी एकांत स्थान में, या रात को सोने से प्रथम, या रात के स्वप्नों में जो वासनाएँ या खयालात (cravings) हृदय में वेग के साथ प्रकट होते हैं, उनसे मनुष्य के असली धर्म का पता मिलता है कि आया उसका धर्म या उपास्यदेव रुपया है, स्त्री है, विद्या है, या सचमुच ईश्वर है ।

धन्य हैं वे जिनका असली धर्म वही है जो वे ऊपर से प्रकट करते हैं ।

"सद् जाँ फ़िदाए आँ कि जुबानो-दिलश यकेस्त ।"

अर्थ-जिनका मन और वाणी एक है, उन पर मैं सौ जान से फ़िदा हूँ ।

हिंदी-भाषा के महाकवि, भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से रसखान-खानखाना आदि सच्चे मुसलमान भक्तों के विषय में क्या ही अच्छा कहा है ।

"इन दो चार मुसलान पर कोटों हिंदू वारिये ।"

वह व्यक्ति जो सच्चे हृदयवाला (sincere heart) है, वह राम का अत्यंत अधिक निकटस्थ है उस व्यक्ति की अपेक्षा कि जो राम के विचारों से तो बिलकुल सहमत है, किंतु उन विचारों को व्यवहार में नहीं लाता ।

मन नमेगोयम अनलहक़, यार मेगोयद, बिगो ।
चूँ न गोयम ? बर सरे-बाज़ार मेगोयद, बिगो ॥

अर्थ—मैं अनलहक़ नहीं कहता हूँ, यार (सत्यरूप) खुद कहता है कि तू कहो। मैं फिर क्यों न कहूँ, वह सरे-बाज़ार कहता है कि कहो।

कब लिबासे-दुनयवी में छुपते हैं रौशन ज़मीर।
जामाए-फ़ानूस में भी शोला उरयाँ ही रहा॥

वह पुरुष, ऊपर से चाहे हिंदू हो या मुसलमान या ईसाई आदि, "स्वार्थपरता" रूप धर्म का अनुयायी है जो केवल इंद्रियों के विलास के लिये कटिबद्ध है; जिसे घर की परवाह है न घाट की; स्त्री, बाल बच्चे मरें चाहे जियें; नंगे रहें, भूखे रहें, प्यासे रहें, उसकी बला से; किसी की शिक्षा की चिंता है न किसी के सुधार की चर्चा है; संतान तो फ़ाक़ामस्ती में दिन काटे और आप यारों में बैठकर भंग-बूटी उड़ाएँ, गाँजा और सुलफ़े के दम लगाएँ, चिमन बीबी (अफ़यून) से सोहबत गरमाएँ।

भंगा पीवन सोवन वागाँ।
धर दे जीवन अपनी भागाँ॥

च वाँ आँ बे हमीयत रा कि हरगिज़।
न ख़्वाहिद दीद रूए-नेक बख़ती॥

तन आसानी गुज़ीनद ख़्वेश तन रा।
ज़नो फ़रज़ंद बिगुज़ारद ब सख़्ती॥

अर्थ—उस निर्लज्ज मनुष्य को देख, वह कभी नेकबख़्ती का मुँह न देखेगा, क्योंकि वह केवल अपने लिये आराम पसंद करता है और स्त्री-पुत्रों को विपत्ति में छोड़ता है।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनन्दन॥ गीता० (१४-१४)

अर्थ-ऐ अर्जुन ! तमोगुण के बढ़ने पर मूर्खता, अकर्मण्यता, आलस्य और मोह ये सब आ जाते हैं।

यदि मानवी स्वरूप स्वीकार करने पर भी जड़-सृष्टि के गुणों में जकड़े रहना था, तो कवि की उक्ति के अनुसार हजरुलयहूद अथवा कोई बहुमूल्य पत्थर होना हजार गुना अच्छा था।

किसी रंजकश को देते तो कुछ उसको सूद होता।
दिले-सख्त काश पत्थर हजरुलयहूद होता॥

इस स्वार्थपरता धर्म का अनुयायी, इंद्रियों का दास, यदि ऊपर से धनवान् वरन् राजराजेश्वर भी हो जाय, तो हृदयवान् (विशाल चित्त) पुरुषों की दृष्टि में शूद्र ही गिना जाता है, जड़ सृष्टि की श्रेणी में गिना जाता है।

रोम (Rome) के सौभाग्य का सूर्य जब पूर्ण उन्नति पर था, जब वह नगर लगभग संसार-भर का (जितना कि तब ज्ञात था) राजसिंहासन था, वहाँ के उन दिनोंवाले महा प्रतापी महाराजों की तालिका में ये नाम भी पाये जाते हैं।

क्लाडियस (Claudius), कैलीगोला (Caligula), टाईबेरस (Tiberius), डोमीशियन (Domition), वाईटेलियस (vitellius), नीरो (Nero)।

ये वह नाम हैं जिनको सुनते ही इतिहासज्ञों के सम्मुख वह समस्त अकथनीय अत्याचार और पाप मूर्तिमान होकर दृष्टिगोचर हो जाते हैं कि जो संसारमें लुच्चेसे लुच्चा महागुंडा मनुष्य भी विचार में नहीं ला सकता है, जिनको वर्णन करते लेखनी का हिया फटता है, जिनमें से एक को भी लिखने का ख़याल ही करने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पाठको ! यदि उपरि-

लिखित सम्राटों का प्रभुत्व इस शर्त पर प्राप्त होता हो कि उन लोगों जैसी प्रकृति और स्वभाव भी अवश्य लेना पड़े, तो थूक दो इस साम्राज्य पर, धूलि डालो इस शाहंशाही पर!

गर फ़रेदूं शवद व नेमतो-मुल्क।
वे हुनर रा व हेचकस मशुमार॥
परनियां च नसीज बर ना अहल।
लाजवर्दो-तिलास्त बर दीवार॥

अर्थ—निर्गुणी मनुष्य यदि ऐश्वर्य और वसुधा में फ़रेदूं जैसा बन जाय, तो भी उसको सामान्य मनुष्य के बराबर भी तू मत गिन। अशिष्ट मनुष्य के शरीर पर रेशमी वस्त्र ऐसे हैं जैसे दीवार पर लाजवर्द और सोना (अर्थात् दीवार पर चित्रकारी)।

ओ भारत-निवासी! स्मरण रख, आदि से तू वह है जिसके यहाँ रुपयेवाले की तो महिमा और मान नहीं, वरन् सद्गुण (virtue) वाले की। जिसके यहाँ अब तक भी रुपये को न छूनेवाला संन्यासी अपने ज्ञान के कारण नारायण-स्वरूप माना जाता है। और जिसके यहाँ एक कुटिया में रहनेवाला नग्न शरीर, फल-फूल पर निर्वाह करनेवाला गरीब ब्राह्मण अपने ज्ञान और सद्गुण के कारण देवताओं के समान पूजा जाता था; न केवल (सांसारिक ऐश्वर्य के स्वामी) वैश्य लोगों से, वरन् (शारीरिक शक्तिवाले सुंदर शोभायमान वस्त्रों से सुशोभित, रत्नाभूषणों से समलंकृत) राजाओं, महाराजाओं से।

बाहरी वैभव, ऐश्वर्य, सांसारिक ठाठ-बाट, और अल्पकालिक (क्षणिक) तेज-प्रताप के बदले वास्तविक आनंद (peace), अक्षय प्रसन्नता (शांति) को हाथ से मत दो। बुझी क़लई (चूने) का छोटा सा गोला देख उसकी सफ़ेदी

पर मोहित होकर उसके बदले अपने हाथवाला ताज़ा मक्खन का पेड़ा मत बदल लो। पछताओगे, यह चूना खाया हुआ कलेजा फाड़ देगा, हृदय रक्त कर देगा, मार डालेगा। प्यारे! जिस चाह से सांसारिक संपत्ति को एकत्र करने में दिन-रात मिहनत करते हो और कुछ हाथ भी नहीं आता, उसी परिश्रम से आत्मिक उन्नति के लिये कुछ भी समय व्यय करो तो अमृत जीवन प्राप्त हो जाय।

शशि सूर पावक को करे परकाश सो निज धाम वे।
इस चाम से तजि नेह तू, उस धाम कर विश्राम वे॥

इक दमक तेरी पाय के, सब चमकदा संसार वे।
टुक चीन ब्रह्मानंद को, जग नीर ते है पार वे॥

मंसूर ने सूली सही, पर बोलता वही बैन वे।
बंदा न पायो खल्क़ में, जब देखियो निज नैन वे॥

आशिक़ लखावें सैन जो, लख सैन को कर चैन वे।
तूं आप मालिक खुद खुदा, क्यों भटकदा दिन रैन वे॥

मनुष्य-स्वरूप में वनस्पतिवर्ग—वनस्पतिवर्ग यद्यपि कई प्रकार के होते हैं (नारियल, सरो,सेब, अँगूर, पीपल, आक, ढाक, सुंबल आदि), जिनके विस्तृत विवरण में वनस्पति-विद्या (Botany) के बड़े-बड़े ग्रंथ मौजूद हैं, किंतु सामान्य रीति से वनस्पतिवर्ग का स्वभाव यह है कि एक ही स्थान पर बढ़ना, फलना फूलना, अपने वंश (Species,कुल)को स्थिर रखना,पत्ते टहनियाँ आदि पर्याप्त हों तो पथिकों को छाया भी देना, अतिथि के आगे या स्वामी की सेवा में मीठे या कड़वे फल (जैसे मौजूद हों) उपस्थित कर देना; परंतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की

सामर्थ्य न रखना और प्रायः पशुओं या मनुष्यों के अत्याचारी हाथों से नष्ट हो जाना, काट जाना। जैसे विश्व (ब्रह्मांड, Macrocosm) में वनस्पतिवर्ग की आवश्यकता है (आवश्यकता न होती तो मौजूद ही क्यों होते), वैसेही मानवी चोला (microcosm, अंड, सूक्ष्म सृष्टि) में भी वनस्पतिवर्ग की प्रकृति और गुणवालों की आवश्यकता है, परन्तु कवि के कथनानुसार।

गरचे कस बे अजल न ख्वाहद मुरद।
तौ मरौ दर दहाने-अयदरहा॥
ख़ंदाँ रू बूदन बिह अज़ गंजो गुहर बख़शीदन अस्त।
ता तवानी वर्क़ बूदन अब्रे-नेसानी मुबाश॥

अर्थ—यद्यपि कोई मनुष्य बिना मृत्यु के नहीं मरेगा, तो भी तू जान-बूझकर सर्प के मुँह में न जा। हँसमुख रहना मोतियों का कोष दे देने से भी अच्छा है, जबकि तू बिजली बनकर रह सकता है (अर्थात् प्रसन्न-चित रह सकता है) तो वर्षा का बादल (अर्थात् रोनी सूरत) मत बन।

यदि मानवी चोले में आनकर भी वनस्पतिवर्ग (जड़) बने रहे और उस स्वतंत्रता को प्राप्त न किया जो इस चोले में मिल सकती है, और टैंटेलस (Tantalus) की तरह मीठे जल में खड़े होने पर भी प्यासे और चारों ओर सुस्वादु मेवों के बीच में रहकर भी भूखे रहे, तो शोक, महाशोक है।

हीरे जैसा जन्म तुम्हारा कौड़ी बदले बेच दिया।

पाठक जान गए होंगे कि मनुष्यों में वनस्पति कौन हैं। यह हैं "कुटुंब-पालक", "परिवार उपासक", साधारण गृहस्त लोग, जिनके जीवन को वैश्य-जीवन

की उपमा दी जा सकती है, जिनके जीवन का वृत्त ह् से यह अन्य वृत्त द् से वर्णित हो सकता है, जिनके जीवन की गति की तुलना कोल्हू के बैल की गति से है, जिनका असली धर्म दुकानदारी है, जिनका मुक्ति के लिये सिफ़ारिश करनेवाला (अवतार या पैगम्बर) रुपया है, जिनका गुरुदेव स्त्री है, और जिनके लिये यथार्थ पूज्य (इष्टदेव) देह-दिखावा (vanity, पाखंड, शेखी) है। इन लोगों के जीवन का वृत्त पेट-पालकों के वृत्त से बहुत अधिक विस्तृत होता है। 'पेट-पालू' तो केवल अपना ही पेट पालता है, कुटुंबवाला समस्त कुटुंब की पालना करता है, आप भूखा रहकर दुःख झेलकर कुटुंब की सेवा करता है। पेटपालू की प्रीति के बाहु इतने छोटे होते हैं कि बिचारा लुंजा जब छाती के सामने आलिंगन के लिये प्रेम के बाहु फैला एक हाथ से दूसरे हाथ को छूता है तो (और किसी को अपने प्रीति के घेरे में ले आना तो एक ओर रहा) महा मुश्किल से अपनी छाती की चौड़ाई को नापता है। कुटुंब वाला यत्किंचित् विशाल-बाहु होता है, पुत्र-पुत्रियों को अपने अंक(कक्षा)में ले सकता है। जैसे कोल्हू के बैल वाले वृत्त में लट्टू वाले वृत्त अधिक संख्या में समा सकते हैं, वैसे ही "कुटुंब-पालक" की उदारता का क्षेत्र कई अशक्तों को शरण देता है। लट्टू की अपेक्षा बैल अति अधिक मूल्य का होता है, वैसे ही "पेट-पालू" की अपेक्षा "परिवार-पालू" का होना धन्य है। वनस्पति वर्ग की चर्चा में किसी ने कहा है।

हे नर ऐसी प्रीति कर जैसी वृक्ष करे।
धूप सहे सिर अपने औरों छाँव करे॥

मानवी वनस्पति वर्ग भी बहुत कुछ इस प्रशंसा के योग्य है, और देश की शोभा-सौंदर्य को बढ़ाता है।

आज कल भारतवर्ष में इस वैश्य (गृहस्थों) समुदाय का बोल बाला है, क्षत्री हैं तो सारे देश को अपना घर समझने के स्थान पर एक छोटे से घर को अपना देश समझते हैं, ब्राह्मण हैं तो ब्रह्म (ईश्वर) के स्मरण में घर-बार को भुला देने के स्थान में स्त्री-बच्चों की चिंता में ब्रह्म (ईश्वर) को निमग्न कर रहे हैं, और वैश्यों को रुपए का विहित त्याग सिखाने के स्थान में उनसे अविहित और अनुचित ग्रहण सीख रहे हैं। जो है सो व्यावहारिक रूप से वैश्य-धर्म का दम भरता है। ले वैश्य-धर्म! तेरे पौ बारह हैं। राजा जाति (अँगरेज़) भी तो सौदागर ही हैं, अर्थात् वैश्य हैं।

'अतीक़ के अहदनामे' में लिखा है कि हज़रत लूत, उसकी लड़कियाँ और उसकी स्त्री सोदोम (Sodom) नगर से इकठे बाहर जा रहे थे; शेष सब का मुख तो नगर के बाहर की ओर था, किंतु लूत की स्त्री का ध्यान पीछे नगर की ओर था। परिणाम यह हुआ कि शेष सब को मुक्ति मिली, किंतु लूत की स्त्री बिचारी वहीं लवण का स्तंभ बन गई। प्यारे पाठको! यह कहानी मनुष्य से संबंध रखनेवाले एक प्राकृतिक नियम को प्रकट करती है, जो लॉर्ड बैरन (Lord Byron) के शब्दों में इस प्रकार वर्णित हो सकता है।

"'Tis his nature either to advance or die;
He stands not still, but or decays or grows.

अर्थ—मनुष्य का स्वभाव यह है कि या तो वह उन्नति करे या अवनति; वह कभी थिर नहीं रहता, अपितु अवनति करता है। जैसे मनुष्य का शरीर बचपन से लेकर बराबर बढ़ता जाता है, वैसे ही मनुष्य की आत्मिक अवस्था के लिये भी लगातार उन्नति करते जाना आवश्यक है। अतः—

From well to better daily Self-surpassed.
(Wordsworth)

"नित्यप्रति उन्नति करना और पहले दिन की अपेक्षा दूसरे दिन और उत्तम हो जाना मानवी स्वभाव है", (वर्ड्सवर्थ)

अपने वृक्षों को बढ़ाना, प्रतिदिन पग आगे चलाना रोक दिया जायगा तो प्रकृति-नियम के चक्कर में कुचले जाना होगा, पतन आरंभ हो जायगा, मृत्यु का सामना होगा।

"Advance or Perish" is the
grim watch word of Nature.

अर्थ—" आगे बढ़ो या नष्ट हो जाओ ", ऐसा प्रकृति का उग्र संदेशा है।

खंजर न चले तो मोर्चा खाए।
पानी न बहे तो उसमें बू आए॥

(लूत-पत्नी की तरह) जिस समय अपनी पहली अवस्था (सोदोम नगर) से निकलने को बुरा माना और बड़े वृक्ष fresh fields and pastures new (हरित खेतों, मैदानों और नए-नए लता-कुंजों) की ओर जाने से इनकार किया, बस वहीं लवण का खंभा बनना पड़ेगा। जिस समय बैल ने ज़रा आगे चलने से सुस्ती की, तड़ से कृषक का चाबुक खाया। जब कोई व्यक्ति या जाति या देश एक ही अवस्था में गलना (Stagnate करना) चाहता है, तो प्रकृति-नियम (Divine Providence नेचर, ईश्वर या कर्म) का झट डंडा खाता है; अर्थात् भाँति-भाँति की विपत्तियों के चंगुल में फँसता है, मृतक की तरह कीड़ों का आहार बनता है,

दासता की पाश (बन्धन) में फँसता है। बी० ए० की श्रेणी अत्यंत श्रेष्ठ ही सही, किंतु यदि कोई मनुष्य उस श्रेणी में घर कर बैठे और फ़ेल ही होने पर कटिबद्ध हो जाय, मल्लाह की तरह सहपाठी विद्यार्थियों के एक खेवे को परीक्षा रूप नदी पार करा आए, और फिर उसी नौका में दूसरे खेवे को उत्तीर्ण कराने आ जाय, और इसी तरह फिर तीसरे चौथे खेवे को, इत्यादि, तो वह व्यक्ति अयोग्यों की पंक्ति में गिना जायगा, निराशा और अपमान सहना पड़ेगा। वैसे ही वैश्य बुद्धिवाला मनुष्य (कुटुंब का गुलाम) यदि घर की चार-दीवारी में अपनी मनो-संपत्ति गाड़ दे, और प्रेम का क्षेत्र विस्तीर्ण न करे, तो अपमान उठाएगा और दुःख पाएगा।

द वृत्त की ओर ध्यान करके देख लो। थोड़े से क्षेत्र को घेरे हुए अवश्य है, किंतु शेष सब कागज़-पृष्ठ की ओर पीठ मोड़े हुए है। थोड़े से तल (क्षेत्र) को include (सम्मिलित) करता है, तो शेष सारे संसार को exclude (पृथक्) करता है। यही हाल (आगे उन्नति न करनेवाले) गृहस्थी के चक्र में आबद्ध व्यक्ति का है। बालबच्चों का पालन पोषण अवश्य करता है, किंतु महकमा कमसरियेट में, महकमा बंदोबस्त में, महकमा इंजीनियरिंग में, डाक्टर के वेष या वकील के रूप में, या जिस आफ़िस में हो, अपने सजातियों के रक्त में हाथ रँगने को हर समय तैयार रहता है, जिनसे काम पड़ जाय उनके गले काटने को भली भाँति तत्पर रहता है। यदि शेष सब घर उजड़ते हैं तो बला से, यह उत्कोच (घूस) ले लेकर अपने घर को किसी धनिक की समाधि (क़बर) के बराबर ऊँचा अवश्य बनाएगा। जिन लोगों को इससे पाला पड़ जाय, उनकी स्त्रियों के मुख शोक से मुर-

झाते हैं तो क्या डर है, यह उनके आभूषणों को बिकवाकर अपनी स्त्री के मुखड़े को सोने से अवश्य-अवश्य सज्जित करेगा, उसे पति-चरण बनाएगा। अपनी आत्मा पस्त (शिथिल या निर्बल) होती जाय और बराबर सुकड़ती जाय, तो क्या परवा है, यह अपनी स्थावर संपत्ति को अवश्य ही बढ़ाएगा, घर को ऊँचा बनाएगा। शोक! सहस्र शोक!!

बरीं अक़्लो-दानिश बबायद गिरीस्त।

अर्थ—ऐसी बुद्धि और समझ पर रोना चाहिए।

इस बंदी घर में अधिक काल बंद रहने से चोरी, ठगी, डाकूपन के रोगों में फंस जाता है, धनी लोगों का ख़ून करना भी इसी स्कूल में सीखता है? क्यों न होः—

कि बू फसाद की आती है बंद पानी में।

कठिन परिश्रम करने पर भी वहाँ का वहीं रहने और उन्नति न करने में कोल्हू का बैल प्रसिद्ध है। बैल पर यह पंजाबी कहावत चरितार्थ होती है-"भौं चौं के उग्गों दे चक्क"। ठीक यही हाल संसारी (स्त्री-पुत्रों में ग्रस्त) व्यक्ति का है। बिचारा बैल की नाईं श्रम करता है, रात-दिन दफ़्तरों या दुकानों में ज्ञान-दृष्टि पर आवरण डाले कोल्हू चलाए जाता है। यह कुछ पता नहीं कि इस कोल्हू के चलाने से क्या प्राप्त होगा, कहाँ जा रहा हूँ, क्या बना रहा हूँ? इत्यादि; हाँ जब आँखों पर से मृत्यु समय पर्दा ज़रा उठेगा, तो देखेगा कि हाय-हाय! रात दिन परिश्रम करते-करते मर मिटे, समझते थे बहुत यात्रा पार कर चुके होंगे, किंतु अपने आपको वहाँ का वहीं पाया, कुछ न उन्नति की। हाय री तृष्णा! वाय री तृष्णा! कुछ न कर सके! कुछ न बना सके! उस समय

रोना और दाँत पीसना होगा, प्राण भी संकट ही में निकलेंगे।

जाँ व जानाँ दिह वगरना अज़ तो विस्तानद अजल।
खुद तो मुंसिफ़ वाश, ऐ दिल! ईं निको या आँ निको॥

अर्थ—प्राण अपने प्यारे (प्रिया) को दे, नहीं तो मृत्यु तुझ से इसे अवश्य ले लेगी। ऐ दिल! तू स्वयं न्याय कर कि यह अच्छा है, या वह अच्छा है।

ओ कुटुंब के फंदे में फँसे हुए!

आराम की नहीं है यह जगह, हाँ बढ़े चलो, हाँ बढ़े चलो। आलिंगनार्थ फैलनेवाले बाहुओं को विशाल करो, अपने प्रेम (fellow-feeling) के वृत्त को विस्तृत करो, बढ़ो, यहाँ तक कि जीवन को निरूपण करनेवाला चारों ओर से परिमित वृत्त फैलते-फैलते अपरिमित विस्तार को स्वीकार करे और सीधीरेखा बन जाय, और तुम्हारा जीवन भूल भुलैयाँ से निकलकर सब को सीधा-मार्ग दिखाए। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, यहाँ तक कि मिथ्या जगत् का "आगा पीछा" बिल कुल अर्थहीन हो जाय।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥
(अथर्व० मुंडको० अ० २ खं० २)

अर्थ—ब्रह्म ही यह अमृत-रूपी सामने है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दहिने और ब्रह्म ही बाएँ है। यह नीचे और ऊपर फैला हुआ है, ब्रह्म ही यह सब कुछ है, वह सब से श्रेष्ठ है।

अंदरूँ व बिरूँ तुई ऐ दोस्त!
दर चुपो-रास्त-ज़ेरो-बालाई।

अर्थ—भीतर-बाहर, दहिने-बायें और ऊपर-नीचे, ऐ मित्र ! तू ही है।

आगे चलो, आगे चलो, यहाँ तक कि "चलना-फिरना" निरर्थक हो जाय।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।

तदंतरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

(यजु० ईशा० मं० ५)

अर्थ—हम चल हैं, हम चल हैं नाहीं, हम नेड़े, हम दूर।

हम ही सब के अंदर चानन, हम ही बाहर नूर ॥

मस्तम कुनाँ चुनाँ कि न दानम ज़ बे ख़ुदी।

दर अरसए-ख़याल कि आमद कुदाम रफ़्त ॥

अर्थ—मुझको ऐसा मस्त करदे कि मैं बेखुदी से इस बात को न जान सकूँ कि विचार के मैदान में कौन आया और कौन गया ? (अर्थात् उस प्रियतम के ख़याल में बेहोश और निमग्न हो जाऊँ)।

आगे चलो, आगे चलो, यहाँ तक कि चक्कर में व्याकुल और अस्त करनेवाले वृत्त से बचकर सन्मार्ग में चलने वाले सूर्य का जीवन पा लो, प्रकाश ही प्रकाश बन जाओ, और यह अवस्था आ जाय।

क्वात्मा क्व चानात्मा क्व शुभं क्वाशुभं तथा।

क्व चिंता क्व चाचिंता स्वमहिम्निस्थितस्य मे ॥

अर्थ—है कहाँ ज़ात और कहाँ है ग़ैर ज़ात ?

क्या बुराई ? कौन सी ख़ूबी की बात ?

फ़िक्र कैसी मुझको ? बेफ़िकरी कहाँ ?

मस्त अपने नूर में हूँ महे-ज़ात।

प्यारे पाठक ! एक झूठी, काल्पनिक, नाशमान धर्मशाला (सिराय) से यह प्रीति कि तू अपने असली घर को बिलकुल भूल बैठा ! यह भोलापन छोड़ो, असली घर (निजधाम) को मुँह मोड़ो, असली स्वदेश-प्रीति को मत खो दो।

तायरानेम कज़ क़ज़ा व क़द्र।
ओफ़्तादा जुदा ज़ गुलज़ारेम॥
मुर्ग़-शाख़े-दरख़्त-लाहूतेम।
गौहरे-गंज-दुर्ज-असरारेम॥
या दुर अज़ मुहीत-तौहीदेम।
गौहर या ज़काने-इरफ़ानेम॥

अर्थ—हम वह पक्षी हैं जो भाग्य वश अपने बाग़ से अलग गिर गए हैं (या जुदा हो गए हैं)। हम ब्रह्मलोक के वृक्ष की शाखा के पक्षी हैं, और रहस्यों के डब्बे के कोष के मोती हैं, या अद्वैत रूपी वृत्त के एक मोती हैं, या ईश्वर-परायणता की खानि के एक मोती हैं।

बराए नाम भी अपना न कुछ बाक़ी निशां रखना।
न तन रखना, न दिल रखना, न जी रखना, न जां रखना॥
ताल्लुक़ तोड़ देना, छोड़ देना, उसकी पाबंदी।
ख़बरदार अपनी गर्दन पर न यह बारे-गिरां रखना॥
मिलेगी क्या मदद तुझ को मददगाराने-दुनिया से।
उमेदे-यावरी उनसे न यां रखना न वां रखना॥
बहुत मज़बूत घर है आक़बत का दारे-दुनिया से।
उठा लेना यहां से अपनी दौलत और वहां रखना॥
उठा देना तसव्वर ग़ैर की सूरत का आँखों से।
फ़क़त सीने के आईने में नक़्शे-दिलसितां रखना॥

किसी घर में न घर कर बैठना इस दारे-फ़ानी में।
ठिकानां वे ठिकाना और मकां वर लामकां रखना ॥

मनुष्य-रूप में प्राणि-वर्ग—अब ज वृत पर दृष्टि डालिएगा। द वृत से बहुत बड़ा है, यद्यपि टेढ़ापन (वक्रता) दूर नहीं हुआ। यह वृत उन लोगों के जीवन-चक्र को निरूपण करता है जो अपनी जाति (caste) भर के साथ उतनी प्रीति रखते हैं जितनी पेट-पालू अपने शरीर के साथ रखता है, या कुटुम्ब-पालक अपने बाल बच्चों के साथ। और जो समस्त जाति की भलाई के लिये उतने ही उद्यम के साथ परिश्रम करते हैं जितना कुटुम्ब-पालक अपने कुटुम्ब के लिये करता है। पेट-पालू का प्रीति-केंद्र (लट्टू की नाईं) अपने ही शरीर में था, कुटुंब-पालू का गति-केंद्र (centre of force) बैल की भांति शरीर से ज़रा दूरी पर था, जाति-पालक को घुमाने वाली शक्ति (जाति-प्रीति) उसके शरीर से और भी दूरी पर क्रिया करती है। उसके जीवन चक्र का गति-केंद्र देह-अभ्यास (य विंदु) से अपेक्षाकृत बहुत दूर है। इसीलिये उसका ज़ीवन-चक्र भी बहुत विस्तृत है। जाति-पालक की जीवन-गति को घोड़दौड़ के घोड़े (race horse) की गति से तुलना दी जाती है। यह घोड़ा अपनी गति से बैल आदि की अपेक्षा बहुत बड़ा वृत्त बनाता है। मेलों में या और अवसरों पर इस पशु के चमत्कार देखने को नगरों के प्रत्येक गली-कुचों के कौतुक-प्रिय लोग दौड़े जाते हैं। अत्यंत मूल्यवान् होता है। बहुत प्रशंसा के योग्य है। स्वजाति-प्रति-पालक को भी यह सब प्रशंसा शोभा देती है। सृष्टि के भीतर जीवन के Evolution (विकास) की दृष्टि से इसी quality.

(श्रेणी) की गति का प्रकाश (खनिजवर्ग और वनस्पतिवर्ग की अपेक्षा) पशुवर्ग में होता है, और मानवी वेष के भीतर आध्यात्मिक जीवन के Evolution (विकास) के विचार से इसी श्रेणी की चेतनता जाति-पालक के जीवन को विविक्त करती है। अर्थात् प्राणिवर्ग (पशुओं) का शारीरिक जीवन और जाति-पालक का आध्यात्मिक जीवन एक ही श्रेणी का होता है, और वे एक ही वृत्त से निरूपित हो सकते हैं (उस वृत्त से जिसमें घोड़दौड़ का घोड़ा चक्कर लगाता है)। और जो चेतनता (energy) का प्रकाश प्राणिवर्ग में होता है, जाति-प्रतिपालक मनुष्य में भी उसके अनुकूल और समतुल्य चेतनता का प्रकाश होता है। ऐसे महाशय की बदौलत कई परिवार तृप्ति और सुख पाते हैं, कई दोषों और कुरीतियों का जुवा उसके सजातियों के गर्दन पर से उतरता है। किसी जाति या समाज या सभा के लिये ऐसी उत्तम अभिलाषा वाले का अस्तित्व सौभाग्य का चिन्ह है। किंतु पाठको! लूत की थीथी वाले दृष्टांत को भूल न जाना, और न विज्ञान की इस बात को विस्मरण कर देना कि चेतनता का होना या न होना गतिशील शरीर के स्थान पर निर्भर नहीं होता, बल्कि गति के मुख (रुख) पर अवलंबित होता है। और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शरीरिक जीवन के स्वास्थ्य का अनुमान जानदार के डील-डौल से लगाना बिलकुल अयुक्त है। किसी बच्चे आदि का डील छोटा देखकर बोल उठना कि उसका स्वास्थ्य खराब है (रोगग्रसित है), और किसी बिछौने पर चित लेटे रोगी को देखकर कह देना कि इसका स्वास्थ्य अत्यंत उत्तम है, उचित नहीं। बल्कि शरीर चाहे छोटा हो, चाहे मोटा (या लंबा), यदि अवनति की ओर धावमान है, तो जानदार का स्वास्थ्य अवश्य खराब है,

और यदि उन्नति की ओर धावमान है, तो स्वास्थ्य अच्छा ही है। ठीक यही हाल आध्यात्मिक जीवन का है।

यदि कोई व्यक्ति हूँ वृत्त में जीवन यापन (व्यतीत) करता दृष्टिगोचर होता है,हर प्रकार के पापों में प्रवृत्त है, किंतु आज तोबा (पश्चात्ताप) करके अपना वृत्त विस्तृत करने को है, प्रेम के बाहु फैलाने में यत्नशील हो रहा है, तो वह व्यक्ति साक्षात् (Positive) गति प्रकट कर रहा है। उसके जीवन का मुख (दिशा) ठीक है,उसका आध्यात्मिक स्वास्थ्य उत्तम है। और यदि कोई महाशय, जिनका जीवन-वृत्त ज या व से निरूपित हो सकता है (अर्थात् जो जाति-प्रति-पालक या देश-सेवक नाम पाते हैं),अपने Sphere (वृत्त) में बराबर भ्रमण करते रहने पर क्षति कर रहे हैं, किंतु साथ के साथ उस वृत्त को विस्तार नहीं दे रहे हैं [दूसरे शब्दों में उनकी पहली गति (velocity) में चपलता (acceleration) नहीं हो रही है], वह महाशय आध्यात्मिक-रोगी हैं, अवनतिपरायण हैं,उनकी जीवन-गति शीघ्र अभाव रूप (negative) हो जायगी,गिरेंगे, अपने जीर्णरोग से जाति की जाति को और देश के देश को हानि पहुँचाएँगे, और घोर पतन का कारण होंगे। वह जाति का नेता जिसके मन में अपनी जाति ही समा रही है, अपनी जाति को जिस तरह हो सके उन्नति दिया चाहता है, जाति के कल्याण और भलाई के यत्न में तन-मन से संलग्न है, पर अन्य जातियों की कुछ परवा नहीं करता, वरन् अन्य जाति को अपनी जाति के अधीन बनाया चाहता है [स्वयं ब्राह्मण-सभा का होकर यह चाहता है कि ब्राह्मणों का तो अभ्युदय हो,शेष सब जातियाँ जाँय जहन्नुम को ; और स्वयं यदि कायस्थ-कानफ्रेंस या आरोड़वंश

सभा का है, तो कायस्थों या अरोड़ों का राज्य लाने का इच्छुक है, शेष सब जातियों को पददलित करने पर तुला है; स्वयं आर्यसमाजी है, तो सनातनधर्मियों और ब्रह्मसमाजियों के रक्त का प्यासा है, या सनातनधर्मी होकर आर्यसमाज आदि के नाम का कट्टर शत्रु है—इत्यादि-इत्यादि]; ऐसा जाति-पालक, पेट-पालू और परिवारोपासक (दोनों) से डील डौल में तो बढ़ा हुआ है, उनका बड़ा भाई है; किंतु है आध्यात्मिक रोगी। उसकी गति अभावरूप होनेवाली है, अवनति की ओर धावमान है, उसका जीवन-वृत्त दिन बदिन संकीर्ण (तंग) होता जायगा, क्योंकि जो Sectarian (जातिवादी या पन्थाई) अन्य जातियों से संग्राम करके अपनी जाति वा पन्थ को उन्नति दिलाना चाहता है,केवल इस सिद्धांत पर कि यह जाति "अपनी है", "मेरी है", वह आत्महत्यारा [आत्महत्यारा, क्योंकि व्यावहारिक रीति पर "मैं" और स्वयं अर्थात् आत्मा को (जो वस्तुतः शुद्ध, सर्वव्यापक और आनंदघन है) शरीर मानता है, जो मलिन और परिच्छिन्न है] जब अपनी जाति वालों में बैठेगा, तो अपने आप अपने सिद्धांत के अनुसार उस जाति में अपने कुटुंब वालों को प्रतिष्ठा दिलाने का प्रयत्न करेगा। मनमें यह कहकर कि "मेरा समीपी है", यह कुटुंब "अपना है", "मेरा है" और दूसरे कुटुंबों की शक्तियाँ छीन कर अपने कुटुंब का गौरव बढ़ाने में संकोच न करेगा। ऐसे महाशय का वृत्त ज से गिरकर द वृत्त में पड़जाना कुछ कठिन बात नहीं हैं। और जो व्यक्ति अपने कुटुंब से केवल इस ख़याल से प्रेम करता है कि यह कुटुंब "मेरा है,अपना है" (अर्थात् जो केवल शारीरिक संबंध को भान वा महसूस कर सकता है, उत्तम संबंध से बिलकुल अनजान है), वह अपने कुटुंब को शेष कुटुंबों पर गौरवान्वित

करने में चाहे उद्यत हो, किंतु भय है कि जब अवसर पायगा, अपने भाइयों का स्वत्व छीन कर पेट-पालू के वृत्त में गिर जायगा।

कभी-कभी एक संस्था या संप्रदाय किसी सच्चे हृदय वाले (उन्नतिशील) महाशय, की कृपा से कड़वी बेल की तरह बढ़ती है, फैलती है, किंतु शीघ्र उसमें फूट पड़ जाती है, टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। इस पतन का प्रधान कारण प्रायः यही होता है कि उस मत के अनुयायी जो आरंभ में छोटे वृत्तों से उन्नति करते-करते उस बड़े वृत्त में प्रविष्ट हुए थे, वह आगे को उन्नति करने से विमुख रह जाते हैं, अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं [इसमें उनका अपना अपराध समझ लो या उस मत के ideal (आदर्श) के छोटा होने का]। इस नाशमान संसार में एक अवस्था में स्थिर हो बैठने का अर्थ है मृत्यु। (भई जमकर बैठने-योग्य तो एक तेरा अपना सच्चा धाम रूप सिंहासन ही है)। वह energy (उत्साह, शक्ति, आवेश) जो उन मतवादियों के जीवन-वृत्त को विशाल करने के लिये उन्हें दी गई थी अपने समुचित कर्म में व्यय नहीं होती, परन्तु शक्ति-स्थिति (Conservation of energy) के सिद्धांत के अनुसार नष्ट भी भला कब होने की है ? तत्काल ईर्षा, डाह, क्रोध में परिवर्तित हो जाती है, और फूट का कारण होती है (जहाँ गाली-गलौज, कीना और फसाद की दुर्गंध आ रही हो, समझ जाओ कि किसी आध्यात्मिक मृतक की दुर्गंध है)। बहुत बेर तो बात यहाँ तक विस्तार पकड़ती है और पक्षपात इस सीमा तक नेत्र बंद कर देता है कि धर्मकी आड़ में शरीर-भाव शासन करता है, और एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय की मूलोच्छेद करने को तत्पर हो जाती है, केवल इस बिचार से कि "यह मेरी नहीं है"; और यह दूसरी

सम्प्रदाय पहले की मूल उखाड़ने को तुल जाती है,केवल इस हेतु से कि यह अन्य का मत है। पर हाय री आत्महत्या! हाय री खुदकुशी! दोनों भूल बैठे हैं कि उनका अपना आप तो Divine Truth Itself (केवल वस्तुमात्र और सत्य) है, उनका अपना आप तो शत्रु का भी अपना आप है,शत्रु कहाँ?

प्यारे भारतवासियो! शत्रु को घायल किया चाहो, तो करो यह अभ्यास, पकाओ यह पाठ, याद करो यह संथा, realise (अनुभव) करो यह सच्चाई कि शत्रु तुम से भिन्न (जुदा) नहीं है। जिस प्रकार से अपने आपको शरीर में हिप्नोटाइज़ (hypnotise संमोहित) कर चुके हो (भ्रांति के वेग से अपने आपको गन्धा देह बनाए बैठे हो), उसी तरह अपने शुद्ध स्वरूप में निष्ठा करो और देखो कि भयानक शत्रु के शरीर में मैं ही स्थित हूँ कि नहीं।

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मना। (गीता ६-५)

अर्थ—अपना आप ही अपने आपका मित्र (या बंधु, संबंधी) है, और अपना आप ही अपने आपका शत्रु है।

I appear as the enemy, I am the enemy, I am the enemy.

मैं ही शत्रु दृष्टिगोचर होता हूँ, मैं ही शत्रु हूँ, मै ही शत्रु हूँ। शत्रु उड़ गए, शत्रु उड़ गए। ज्ञान के गोलों ने शत्रु उड़ा दिए। मैं ही मैं हूँ। एक मेवाद्वितीयम् हूँ। शुद्ध स्वरूप हूँ।

बेरंग कभू हो के दिखादूँ तुझको।
तू गुल है, तो बू हो के दिखादूँ तुझको॥
मैं आप से जो अपने से फ़ुर्सत पाऊँ।
क्या और तो? तू हो के दिखादूँ तुझको॥

I am the monarch of all I Survey
My right there is none to dispute.

अर्थ—जहाँ तक दृष्टि जाती है, मैं सब का बादशाह हूँ और मेरे स्वत्व पर कोई झगड़ने वाला नहीं।

खुद खुदा हूँ, शाहे-शाह हूँ, एक दिन और रात है।
सो रहे हैं हो के बेग़म, लात ऊपर लात है॥

सब शाहों का शाह मैं, मेरा शाह न कोय।
सब देवों का देव मैं, मेरा देव न होय॥
डंडा कुल पर है मिरा, क्या सुलतान अमीर।
पत्ता मुझ बिन ना हिले, आँधी मेरी असीर॥

(س) सीन सुखी सुरूप नूँ जान होय।
सिरों लाह सुट्टे तीनों तापड़े जी॥
तिनके तोड़ चौरासी दे चार कीते।
जन्म मरण दे चुक्के सियापड़े जी॥
टोपी दूसरा गैर काफ़ूर होया।
ओले बस गए चुप चुपातड़े जी॥
आठो याम हर हाल में मस्त फिरदे।
जमदूतां दे मारके मापड़े जी॥

मनुष्य-रूप में मनुष्य-स्वभाव—अब ब वृत की बारी आई। यह जं वृत से भी बड़ा है। ज जैसे कई वृत इसमें सम्मिलित हैं। इसकी वक्रता (Curvature) बहुत कम है, मार्ग सीधा सा है, किंतु अभी कुछ टेढ़ापन शेष है, वक्रता अभी बिलकुल दूर नहीं हुई। यह वृत्त उन व्यक्तियों के जीवन-चक्र को निरूपण करता है जो देश-भर के साथ वही प्रेम और प्रीति रखते हैं जो पेट-पालू अपने पेट के साथ, कुटुंब-पालू एक कुटुंब के साथ, और जाति-पालक एक जाति के

साथ रखता है; जिन्होंने अपने समस्त समय और ध्यान को देश की भलाई के लिये अर्पित कर दिया है; जिनको अपने देश की धूलि तक प्यारी है; और जो caste colour or creed (जाति, वर्ण और मत) की अपेक्षा के विना ही अपने देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने सगे भाई के समान प्रिय समझते हैं। इस वृत में गतिशील मनुष्य का गति-केन्द्र विन्दु य (अर्थात् शरीर) से बहुत अधिक दूरी पर होता है, और उसका जीवन-वृत अत्यंत विस्तृत होता है। देश-सेवक की जीवन-गति को वृत-विस्तार के विचार से हम चंद्रमा की गति से तुलना दे सकते हैं। देश-सेवक वह है जो भूखों मरते (दरिद्र) देशवासियों के लिये चंद्रमा की तरह ईद (उत्सवतिथि) हो, या जो देश की दारिद्र्य-निशा में चारों ओर प्रकाश का जल बरसा दे, यद्यपि उसकी उदारता का यह प्रभाव न हो सके कि रात्रि मिट जाय (दिन आ जाय)। और जिस तरह उजियाली की बदौलत पौदों में रस भरता है, वैसेही देश-सेवक की बदौलत गृहस्थ लोगों को अमन चैन और प्रसन्नता प्राप्त होती है। आध्यात्मिक जीवन के विकास (Evolution) में देशहितैषी वा देश-सेवक (आध्यात्मिक वनस्पतिवर्ग आदि की अपेक्षा) असल मनुष्य की श्रेणी वाला है, भीतर बाहर मनुष्य है। उसका काम मनुष्य का है और नाम मनुष्य का है।

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिए।
जीता है वह जो मर चुका इंसान के लिए॥

"Breathes there a man with heart so dead
Who never to himself has said
This is my own my native land." (Scott)

अर्थ— क्या कोई मनुष्य ऐसा मृत-चित है जिसने अपने मन में कभी ऐसा न कहा हो कि यह मेरा स्वदेश अपना है।

ऐ भारत ! तेरे शिवाजी, गुरु गोविंदसिंहजी और राना प्रताप कहाँ तक सोए रहेंगे ? यदि स्वदेश-प्रीति (the Spirit of patriotism) का पाठ भी और वस्तुओं की तरह अँगरेज़ों ही से लेना स्वीकार है, तो क्यों नहीं उस डाक्टर के वृतान्त को हृदय-दर्पण पर अंकित बना रखते जिसकी स्वदेश-प्रीति की बदौलत भारत-साम्राज्य में अगरेज़-जाति के पैर दृढ़रूप से आ जमे। यद्यपि पाठकों ने इतिहास में कई बेर यह उल्लेख पढ़ छोड़ा होगा, किंतु जीवन में बरत कर भविष्य इतिहास के पृष्ठों पर स्वदेश-प्रीति की स्मृति स्वयं छोड़ने का संकल्प नहीं कर लिया, तो मानों इस वृतान्त को स्वप्न में भी नहीं पढ़ा। एकांत में अध्ययन करने और पढ़कर अपने नस-नाड़ियों में प्रविष्ट करने के लिये मौलाना आज़ाद की कविता में से यह भाग पाठकों की भेंट किया जाता है।

फ़र्रुख़सियर था हिंद में फ़रमारवाए-मुल्क।
और दौरत-नसीमो-सबा थी हवाए-मुल्क॥
पर हिंद पर था हादसा-ए-ग़म अजब पड़ा।
यानी कि बादशाह था खुद जाँ बलब पड़ा॥
इस तरह का फ़ितूर पड़ा था मिज़ाज में।
था मुब्तिला वह इक मरज़े ला इलाज में॥
सब अहले-अक़्लो-होशो-हवास अपने खो चुके।
सारे तबीब हाथ इलाजों से धो चुके॥
पर इस मसीहदम ने जो आकर किया इलाज।
ऐसा बहस्ब-तबा मवाफ़िक़ पड़ा इलाज॥
गोया दवा बकारे-हुआ हो गई उसे।
और तीन चार दिन में शिफ़ा हो गई उसे॥

नौबत खुशी की बज गई सारे जहान में।
और जान ताज़ा आ गई इक-इक की जान में॥
फ़र्रुखसियर कि शाहे-सखावत मआब था।
बहरे-करम का जिसके झकोला सहाब था॥
इक जश्ने-आम उसने किया धूम-धाम से।
और शोर तहनियत का उठा ख़ासो-आम से॥
हाज़िर हुए अमीरो-वज़ीर आ के सामने।
और उस तबीब को कहा बुलवा के सामने॥
ला दामने-उम्मेद कि भरदें अभी उसे।
ता उम्र भर न पाए तू ख़ाली कभी उसे॥
दरियादिली तबीब की देखो मगर ज़रा।
डाली न उसने लालो-गुहर पर नज़र ज़रा॥
हुब्बुलवतन के जोश से बेताब होगया।
दिल आब होके सीने में सीमाब होगया॥
की अर्ज़ हाथ जोड़के ख़िदमत में शाह की।
बंदा को आरज़ू नहीं कुछ इज़्ज़ो-जाह की॥
ज़र की हवस न माल की है जुस्तजू मुझे।
पर आरज़ू जो है तो यही आरज़ू मुझे॥
कुछ ऐसा मेरे वास्ते इनआमे-आम हो।
जिससे मेरा तमाम वतन शाद-काम हो॥
बोला यह शाह इसका भी तुझपर मदार है।
जो माँगना है माँग, तुझे इख्तियार है॥
तब अर्ज़ की तबीब ने यूँ बादशाह से।
रौशन जलाले-शाहो खुरशेदो-माह से॥
थोड़ी ज़मीन नवाहिये-दरिया-किनार में।
मुझको अता हो ममलिकते-शहरयार में॥
ता इस तरफ़ जो मेरे वतन के जहाज़ आयें।

और उनमें ताजरान ज़्यील इम्तयाज़ आयँ ॥
कुछ उनपै होवे राह न बीमे-ज़वाल को।
आराम से उतारें यहाँ अपने माल को॥
और जिन्स जो कि लाएँ वह नज़दीको-दूर से।
महसूल सब मुआफ़ हो उसका हुज़ूर से॥
दम उस मसीह-दम का बहुत कारगर पड़ा।
यह नुस्ख़ा बल्कि सब से सिवा पुर असर पड़ा॥
हरचंद उसे न फ़ायदए-सीमो-ज़र हुआ।
पर नफ़ा बहरे-अहलेवतन किस क़दर हुआ॥
दामन में इक अताए खुदादाद पड़ गई।
और सल्तनत् की हिंद में बुनियाद पड़ गई॥
अए आफ़ताबे-हुब्बे वतन ! तू किधर है आज ?।
तू है किधर कि कुछ नहीं आता नज़र है आज॥
ठंढे हैं क्यों दिलों में तेरे जोश हो गए ?।
क्यों सब तेरे चिराग़ हैं ख़ामोश हो गए ?॥
हुब्बे-वतन की जिन्स का है क़हतसाल क्यों ?
हैराँ हूँ आजकल है पड़ा इसका काल क्यों ?॥
कुछ हो गया ज़माने का उल्टा चलन यहाँ।
हुब्बुलवतन के बदले है बुग़्ज़ुलवतन यहाँ॥
बिन तेरे मुल्के-हिंद के घर बे चिराग़ हैं।
जलते इवज़ चिराग़ों के सीने में दाग़ हैं॥
कब तक शबे-सियाह में आलम तबाह हो।
ऐ आफ़ताब ! इधर भी करम की निगाह हो॥
आलम से ताकि तीरादिली दूर हो तमाम।
पंजाब तेरे नूर से मामूर हो तमाम॥

(अज़ मजमूआ नज़्मे-आज़ाद)।

परंतु पाठक! माना कि स्वदेश-रक्षक का जीवन अत्यंत उच्च कोटि का है, और उसका जीवन-वृत्त (व) अत्यंत विस्तृत होता है, परन्तु यह वृत्त अभी और भी विस्तृत होने की योग्यता रखता है। सीधी-रेखा नहीं बना। यद्यपि क्षेत्र बहुत घेरे हुए हैं, परन्तु इस क्षेत्र के सिवाय शेष समस्त धरातल से मुँह फेरे हुए हैं। देशसंरक्षक (John Bull) अपने इँगलैंड के अधिकार में चँद्रमा है, तो फ्रांस और स्पेन आदि के लिये राहु (ग्रहण) से कम नहीं। और इस वृत्त में निवास करने वाला देशगौरव-स्वरूप (फख़रे-मुल्क) पूर्वोक्त समस्त वृत्तों में गति शील भाइयों से ज्येष्ठतम तो अवश्य है, किंतु रोगी हो जाने पर (अर्थात् अपने वृत को अधिक विस्तार देने की योग्यता खो बैठने पर) समस्त देश की सत्यानाशी का कारण होता है। पेटपालू से तो प्रायः एक कुटुंब के मनुष्य दुःख पाते हैं, कुटुंबोपासक बिगड़ बैठें तो एक कुटुंब को दूसरे परिवार से भिड़ाएँगे, जाति-प्रतिपालक ख़राब हो जायँ तो एक समाज वा जाति को दूसरी समाज, जाति या सभा से लड़ाएँगे, और सैकड़ों या सहस्रों स्त्री-पुरुषों के मनों में ईर्षा-द्वेष की अग्नि प्रज्वलित करेंगे; परन्तु सोकाल्ड (नाम मात्र) देश-संरक्षक (वा देशभक्त) जो कृपा-वृष्टि के बड़े-बड़े कणों (बूंदों) की भाँति देश को सिंचित करने आ रहे थे, यदि अपनी अवस्था में जम जायँ तो मानों भारी पत्थर बनकर देश पर ओले बरसाएँगे, हिम-वृष्टि (Snow-fall) नहीं बल्कि शिलावृष्टि (hail-storm) से देश-निवासियों के धुएँ उड़ाएँगे, सहस्रों बल्कि लक्षों भगवान् के जीवों (बंदों) के शिर कटवाएँगे, एक देश को दूसरे देश के अधीन करने के लिये रक्त की नदियाँ बहाएँगे, स्वयं इंद्रियों की दासता करने के लिये दूसरे देशवालों की स्वतंत्रता का नाम मिटाएँगे। हाय शोक!

प्यारे ! स्वतंत्रता के इच्छुक हो तो संसार रूप कारागार में उसे मत ढूँढो। देश के स्वामी बन जाने पर भी स्वतंत्रता नहीं प्राप्त होने की। अपने स्वरूप को समझो, स्वतंत्रता मिलेगी; किसी प्रकार की क़ैद पल्ला न पकड़ेगी; अपने आपको वही परम स्वतंत्र पाओगे कि जिसके साधारण भ्रू-विक्षेप से राव-रंक अस्ति-नास्ति (व्यक्त-अव्यक्त) होते है, जिस के आदि-संकेत व संज्ञा (wink and gesture) पर देश, काल और वस्तु (Time, Space and Causality) का अस्तित्व अवलंबित है। तुम्हारी ही नैन-कटारी (निमेषोन्मेष) में सृष्टि का उद्भव, स्थिति, संहार है। धन्य है जगत-आदरणीय दृष्टि ! धन्य है जादू-भरे नेत्र-कमल !

अमी हलाहल मद-भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जे चितवत इक बार ॥

प्यारे, ज़रा जाग तो सही ! अपनी महिमा (glory) रूपी घोड़े बेचकर अविद्या रूपी वेश्या से आलिंगन कर कब तक सोया रहेगा ? श्रुति भवगती तेरे सिरहाने बैठ तुमको मोह-निद्रा से जगाने के लिये ऊँचे स्वरों में तेरी महिमा के गीत गा रही है; पर हाय ! तेरे कान पर जूँ तक नहीं रेंगतीं।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम् कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ (यजु० ई० वा० मं० ८)

है मुहीतो-मनज़्ज़ा व वे अवदाँ।
रगो-पै है कहाँ ? हमा वीं हमा दाँ ॥
वह वरी है गुनाहों से रिंदे-ज़माँ।
वदो-नेक का उसमें नहीं है निशाँ ॥

वह बुज़ुर्ग-बुज़ुर्गां है राहते-जाँ।
वह है वाला से वाला व नूरे-जहाँ॥

वही खुद है जिनाँ व तूँ ज़ बयाँ।
दिये उसने अज़ल में हैं रंगतो-आँ॥

वही राम है दीदों में सबके निहाँ।
यही राम है बहर में बर में अयाँ॥

मृतकों से बाज़ी बदकर सोने का खेल अब बंद करो। एक बेर इंद्र (सब देवतों का राजा) स्वप्न में शूकर बनकर खुजली आदि तरह-तरह के रोगों में फँस गया। शेष देवताओं ने अपने स्वामी की जब यह गति देखी, तो लज्जित हुए और घबराए। अंततः इंद्र के स्वप्नावस्था में आ उपस्थित हुए, और एक ने निकट आकर कहा-"महाराज, यह क्या? आप अप्सराओं को भूलगए!", दूसरे ने कान में कहा-"चन्द्रलोक पति! देवराज! यह क्या? आप अमृत-रस को विसार बैठे!", तीसरा बोला-"शरणागतवत्सल! यह क्या? आप अपनी इंद्र-पदवी वाले जटित-सिंहासन को स्मृति से खो बैठे!", इत्यादि। इंद्र ने इन सब के उत्तर में शिर हिलाया और अपने शूकर वाले मुख और वाणी के स्वर में कहा-"हुवाँ हुवाँ!", मानों अपनी वाणी से प्रत्यक्ष यह जतलाया कि "शूकरनी, विष्टा और कीचड़ जो इस समय मुझे आनंदित कर रहे हैं, इनसे उत्तम अप्सरा, अमृत और सिंहासन भला क्या होंगे! अब देवतागण! अपने सिंहासन विहासन को तुम अपने घर रक्खो, हमें तो कीचड़ में लिथड़ना (निमग्न होना) फूलों के बिछौने पर लोटने से अधिक भाता है"। वाह! मेरे प्यारे! तेरा अपना आप तो इंद्र का भी इंद्र

है । तू सांसारिक स्वप्न में फँसकर मृत्यु को चिकित्सक (वैद्य) और रोग को अपनी दवा क्यों समझ रहा है ?

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । (क० उ० १-३-१४)

अर्थ—उठो, जागो, ज्ञानियों के पास जाओ और आत्मज्ञान को प्राप्त करो।

सर बिनह् बर कफ़ बया ऐ ग़ाज़िया !
ख़्वाब रा बिगुज़ारो-ख़ुद रा कुन रिहा ॥

अर्थ—ऐ ग़ाज़ी (शूरवीर) ! शिर हथेली पर रखकर आ। मूर्खता की निद्रा छोड़ और अपने आपको स्वतंत्र कर।

उठ जाग घुराड़े मार नहीं।
यह सौन तेरे दरकार नहीं ॥

—o—

सब का संक्षेप ।

वृत्त	गति	जीवन	काम या नाम
ह	लट्टू	खनिजवर्ग	पेट-पालू
द	कोल्हू का बैल	वनस्पतिवर्ग	कुटुंब-पालक
ज	घोड़दौड़ का घोड़ा	प्राणि अर्थात् पशु वर्ग	जाति-प्रतिपालक
ब	चंद्रमा	मनुष्य	देश-भक्त (नेता)
अ	सूर्य (زندہ جاوید)	परमात्मा	ज्ञानवान्, आत्मदर्शी

वक्रता नितान्त दूर

अमर पुरुष—ऐ प्रकृति ! अपने पुरुष के दर्शन कर ले। ऐ तारागण के भूषण ! तुम इस सूर्यों के सूर्य पर न्योछावर हो जाओ। अंधकार ! भाग ! ओ आशा-पुष्पोद्यान (गुन्चहाये-चमने-उम्मेद) ! आखें खोलो, विश्वप्राण की महिमा देखो।

मूर्खता के बिछौने पर अँगड़ाइयाँ लेनेवालो ! तुम्हारे नेत्र-कमल क्यों नहीं खुलते ? अपनी ही आँखों के प्रकाश को बाहर देख लो। स्वप्नावस्था में संकल्पों के अढ़ाई चावल कहाँ तक पकाओगे ? रात तो हो चुकी। संसार वाटिका के विहंगो ! आनंद-भरे सोहले (गीत) गाए जाओ, दुल्हा (सूर्य-रूप ज्ञानवान्) का जलूस (उपगमन वा सिंहासनारोहण) का समय आ रहा है। ऐ धरती और आकाश ! दुल्हा के लिये गुलाल (उबटना) तैयार करो। वासंती समीर (वादे-विहारी) ! रंगरलियाँ मनाए जाओ। कृपा-वृष्टि के मेघ ! सड़क पर पानी छिड़क। हरित पद्मवृत्ता दुलहिन (वृक्षों) ! बन ठन अपने कानों (फूलों) में मोती (ओस-कण) सजा निखरकर (प्रतीक्षा में) पंक्ति विन्यस्त हो जाओ। joy! joy!! joy!!! (आनंद ! आनन्द !! आनन्द !!!)

नरगिस वचमन राहे कि मेदीद खुदा।
गोशे-गुल आमदनीहाय कि असपा मे कर्द ॥

अर्थ—ऐ खुदा ! नरगिस (नेत्र) बाग में किसकी प्रतीक्षा कर रही है, और फूल (कर्ण) किसके आने की राह में झुके हुए (ध्यान लगाये हुए) हैं।

किस का आगत-स्वागत है ? उसका जो पहले ही सर्वत्र विद्यमान है, सूर्य के जीवन वाला ज्ञानवान्।

आफ़तावअस्त आफ़तावस्त आफ़ताव।
ज़र्रहा दारंद अज़ ओ रंगो-ताव ॥
मुन्तिलए-दीदारे-हक़ दीदारे-ओ।
मम्बए-गुफ़्तारे-हक़ गुफ़्तारे-ओ ॥

अर्थ—वह सूर्य है, वह वस्तुतः सूर्य है, और उसके कारण से समस्त परमाणुओं में वर्ण और प्रकाश है। उसका दर्शन

सत्य के दर्शन का उदयाचल है, और उसकी वार्तालाप सत्य की वार्तालाप का स्रोत है।

यही सूर्य रूप ज्ञानवान् (ब्रह्मनिष्ठ) है जो पहाड़ और नदी में लाल और मोती बनाता है, पत्ते-पत्ते को प्रफुल्लता प्रदान करता है, प्राणियों (जीवधारियों) में प्राण डालता है, मनुष्य में जीवन का श्वास फूँकता है, भूमि इस ही वास्तविक सूर्य से निकला हुआ एक स्फुल्लिंग है, नक्षत्र सब इस ही के आकर्षण से गतिवान् हैं।

सूरज को सोना चाँद को चाँदी तो दे चुके।
फिर भी तवायफ़ करते हैं, देखूँ जिधर को मैं ॥
तारे झमक झमक के बुलाते हैं राम को।
आँखों में उनकी रहता हूँ, जाऊँ किधर को मैं ॥

यह अमर-पुरुष (चित्घन, The source of all energy) जिस देश में चमकता है, उस देश का आध्यात्मिक जीवन स्थिर रहेगा। सूर्य की तरह यह विज्ञान रूप महापुरुष प्रत्यक्ष में कुछ न करता हुआ भी क्या पेट-पालू, क्या कुटुंब-पालू, जाति-प्रतिपालक, या देश-भक्त, सब को जीवन पहुँचाने वाला होता है; प्रत्येक की छाती में, प्रत्येक के मस्तिष्क में, प्रत्येक की आँखों में, इसका वास है; क्या अमीर के और क्या फ़क़ीर के नाम-रूप और नस-नाड़ी की विद्यमानता इसी के सहारे है; शरीरों की कोठरियों के भीतर भले या बुरे विचार कणों की भाँति उसही प्रकाशों के प्रकाश की stray beams (प्रविष्ट रश्मियों) में निवास वा स्थिति रखते हैं।

माहनों अक़रबो अलह मिन हबलुलवरीद।
(अल्लाह शाह रग थीं नज़दीक)

नाचूँ मैं, नट राज रे—नाचूँ मैं महाराज।

सूरज नाचूँ, तारे नाचूँ, नाचूँ बन महताब रे—नाचूँ मैं०
तन तेरे में मन हो नाचूँ, नाचूँ नाड़ी नाड़ रे—नाचूँ मैं०
बादर नाचूँ, वायू नाचूँ, नाचूँ नदी अरुनाव रे—नाचूँ मैं०
ज़र्रा नाचूँ, समुद्र नाचूँ, नाचूँ मोबर काज रे—नाचूँ मैं०
मधुवा लब बदमस्तीवाला, नाचूँ पी पी आज रे-नाचूँ०
घर लागो रँग, रँग घर लागो, नाचूँ पापा दाज रे-नाचूँ०
राग गीत सब होवत हरदम, नाचूँ पूरा साज रे-नाचूँ०
राम ही नाचत राम ही बाजत, नाचूँ हो निलाज रे-नाचूँ०

नज़र ब हर कि कुनम, रूए-खुद हमे बीनम।
बहर कि मे निगराम रूए-खुद हमे बीनम॥
ब जुज़ व कुल हमा मामूरम अज़ ज़मीनो-ज़माँ।
ब जानबे-कि रवम कूए-खुद हमे बीनम॥

अर्थ—जिस ओर कि मैं दृष्टि डालता हूँ, अपना ही मुख देखता हूँ, और जिस किसी को देखता हूँ मैं अपना ही चेहरा देखता हूँ। देश और काल से मैं समस्त व्यष्टि और समष्टि में भरपूर हूँ, और जिस ओर कि मैं जाता हूँ, अपनी ही गली (निवास स्थान) पाता हूँ।

संपूर्णं जगदेव नंदनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमा।
गांगंवारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः।
वाचः प्राकृत संस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी।
सर्वा वस्थितिरस्य वस्तु विषया दृष्टे परे ब्रह्मणि॥

अर्थ—परब्रह्म के साक्षात्कार होने पर समस्त जगत् उसके लिये इंद्र का बन है, सब वृक्ष कल्पद्रुम, सब जल उसके लिये गंगाजल हैं, सब कर्म पुण्य देनेवाले, सब बोलियाँ (वाणियां)

उसके लिये संस्कृत हैं, महावाक्य काशी है, सब जड़ पृथिवी उसके भोगने की वस्तु है।

अहा हा हा !

कहूँ क्या हाल इस दिल का कि शादी मौज मारे है।
है इक उमडा हुआ दरिया, अहाहाहा ! अहाहाहा !!

शबे-महतावो-वादे-खुश, लवे-दरिया-सनम दर बर।
चसाँ दानंद हाले-मा गरीक़ाने-तमव्वजहा ॥

अर्थ—उजाली रात है, ठंढी वायु है, नदी का तट है, और प्यारा पार्श्व में है। ऐसी दशा में संसार-चिंता की तरंगों में निमग्न मनुष्य हमारी दशा का क्या अनुमान कर सकते हैं।

The World of spirits no clouds conceal;
Man's eye is dim, it can not see.
Man's heart is dead, it can not feel.
Thou, who wouldst know the things that be,
The heart of Earth in the Sunrise red,
Bathe, till its stains of Earth are fled.

(Goethe)

अर्थ—अध्यात्म-जगत् (ब्रह्मलोक) को बादल (सांसारिक लज्जादि का आवरण) नहीं छिपा सकते; केवल मनुष्य की दृष्टि पर धुंध छाया हुआ है, इसलिये वह नहीं (इस जगत् को) देख सकती। मनुष्य का मन मुर्दा है, इसलिये वह इस (लोक वा ब्रह्मानन्द की अवस्था को) अनुभव नहीं कर सकता। ऐ मनुष्य ! यदि तू इन होनेवाली अवस्थाओं (या वस्तुओं) को जानना चाहता है, तो संसार के हृदय (अर्थात् पृथ्वी के ख्याल मात्र) को अरुणोदय (ज्ञान के सूर्य) में खूब धो, और यहाँ

तक धो कि संसार का चिन्ह मात्र भी अपने चित्त से उतर जाय (या भाग जाय)।

वह है राजमार्ग पर चलने वाला नारायण रूप ब्रह्मज्ञानी जिसका अपना आप, पिता माता, पुत्र, घर-वार, और समस्त सम्पत्ति-वैभव, सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है।

तुरा गोयम तुरा दानम तुरा बीनम तुरा ख्वानम।

मन तो शुदम तो मन शुदी मन जाँ शुदम तो तन शुदी।
ता कस न गोयद बाद अज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी॥

अर्थ—तुझे ही कहता हूं, तुझे ही जानता हूं, तुझे ही देखता हूं, और तुझे ही पढ़ता हूं। मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं प्राण हुआ, तू शरीर हुआ (अर्थात् मैं और तू ऐसे अभेद हुए) जिस में उस के बाद कोई यह न कह सके कि मैं और हूँ, तू और है।

आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।
(मुंडकोपनिषद् अ० १ मं० २)

अर्थ—जो मनुष्य आत्मा (अपने स्वरूप) में ही खेलता हुआ, आत्मा (अपने आप) ही में आनंद लेता हुआ समस्त कार्यों को संपादन करता है, वह सब ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्म-ज्ञानी है।

सुबाहे-ईद कि मरदम व कारो-बार रवंद।
बलाकशाने-मोहब्बत व कूए-यार रवंद॥

अर्थ—सवेरे जबकि और मनुष्य संसार के काम काज में प्रवृत होने के लिये जाते हैं, तो मोहब्बत (प्रेम) की विपत्ति सहन करने वाले अपने यार (प्यारे) की गली में जाते हैं।

क्या प्यारे शब्दों में सुखमनी साहब में अमर पुरुष का चित्र दिखाया है —

ब्रह्मज्ञानी का भोजन ज्ञान।
नानक ब्रह्मज्ञानी का ब्रह्म ध्यान॥
ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेप।
जैसे जल में कमल अलेप॥
ब्रह्मज्ञानी सदा निर्दोष।
जैसे सूर सर्व को सोख॥
ब्रह्मज्ञानी निर्मल ते निर्मला।
जैसे मैल न लागे जला॥
ब्रह्मज्ञानी सदा समदर्शी।
ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि अमृत वर्षी॥
ब्रह्मज्ञानी संग सकल ऊधार।
नानक ब्रह्मज्ञानी को जपे सकल संसार॥
ब्रह्मज्ञानी सदा सद जागत।
ब्रह्मज्ञानी अहं बुद्धि त्यागत॥
ब्रह्मज्ञानी के मन परम आनंद।
ब्रह्मज्ञानी के घर सदा आनंद॥
ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़ भागीं पाइये।
ब्रह्मज्ञानी को बल बल जाइये॥
ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर।
नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥
ब्रह्मज्ञानी का कथ्या न जाय अधाखर।
ब्रह्मज्ञानी सर्व का ठाकर॥
ब्रह्मज्ञानी की मत कौन बखाने।
ब्रह्मज्ञानी की गति ब्रह्मज्ञानी जाने॥

ब्रह्मज्ञानी का अंत न पार।
नानक ब्रह्मज्ञानी को सदा नमस्कार॥
ब्रह्मज्ञानी सब सृष्टि का कर्त्ता।
ब्रह्मज्ञानी सद जीवे नहीं मरता॥
ब्रह्मज्ञानी मुक्त जुगत जी का दाता।
ब्रह्मज्ञानी पूरन पुरुप विधाता॥
ब्रह्मज्ञानी अनाथ का नाथ।
ब्रह्मज्ञानी का सब ऊपर हाथ॥
ब्रह्मज्ञानी का सकल आकार।
ब्रह्मज्ञानी आप निरंकार॥

प्रश्न—ज्ञानवान् तो हमारी तुम्हारी तरह अपवित्र शरीर वाला परिच्छिन्न होता है, वह इस उत्तम प्रशंसा का पात्र क्योंकर हो सकता है?

उत्तर—नारायण! ज्ञानवान् एक शरीर में बद्ध नहीं होता।

वह मौजूद रहता है हर रंग में।
कभी आब में और कभी संग में॥

इस भेद को वही जानता है जिस के ऊपर बीती हो।

भई रे मीराँ-प्रेम दिवानी, मेरा मर्म न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज पियादी, कित विध मिलना होय॥

तुम्हारी दृष्टि में एक विशेष शरीर उस का है और दूसरा शरीर किसी और का, किंतु उस के यहां तो एक ही मामला है। यह शरीर उसका अधिक अपना नहीं है, और वह उसका कम सगा नहीं है, उसकी दृष्टि में तो शरीर वरीर हैं ही कहाँ; बुरा कह दो, भला कह दो, काट दो बदन को, टुकड़े कर दो गलि वल हो तो, उसका क्या बिगड़ता है।

यह जिसम अपना तू ऐ बद गो ! तसव्वर महज़ है तेरा ।
हमारा बिगड़ता है क्या ? अहाहाहा ! अहाहाहा !!

लोग समझते होंगे कि मंसूर को सूली पर चढ़ाया, शमस की खाल उतारी, और ऐसा करने से उनको मार डाला, पर हाय कहाँ ?

सूली सलीब ज़हर दे मुक्के,
फंदे न मुकदा जो, फ़क़ीरा आपे अल्लह हो ।

दार पर चढ़कर कहा मंसूर ने ।
आज अपना बोल बाला हो गया ।

मरे न डरे न जरे, हरे तम, परम आनंद सो पायो ।
मंगल मोद भरयो घट भीतर, गुरु श्रुति ब्रह्म त्वमेव बताओ ॥

न मे मृत्युशंका नमे जातिभेदः, पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बंधुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं ॥
(श्रीशंकराचार्य कृत स्तोत्र)

अर्थ—न मुझे मृत्यु का भय है, न कोई सांसारिक जाति-पाँति का भेद (अन्तर) है; न मेरा कोई पिता ही है और न माता ही है, और न जन्म ही हुआ है; इसलिये न कोई संबंधी, न मित्र, न गुरु, और न शिष्य मेरा है, वरन् मैं तो इन समस्त संबंधों (नाम-रूपों) से विमुक्त हुआ सच्चिदानंद-स्वरूप हूँ, शिव हूँ, शंकर हूँ ।

इधर श्रुति डंके की चोट पुकार रही है:—

"अयमात्मा ब्रह्म" । (अथर्व० मांडूको० मं० २)

अर्थ—यह आत्मा ब्रह्म है ।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदांत डिंडिमः" ॥
(ब्रह्मनामावली)

अर्थ—ब्रह्म सत्य और संसार झूठा है, और जीव और ब्रह्म में वस्तुतः भेद नहीं है, इसी से सतशास्त्र जानने के योग्य हैं, यह वेदांत का ढिंढोरा है।

इधर पत्ता-पत्ता और परमाणु-परमाणु ढोल पीटकर कह रहा है:—

"तत्त्वमसि," "तत्त्वमसि"। (साम० छांदो०प्रपा०६खं०८)

अर्थ—वह (स्वरूप हे प्यारे!) तू है, वही वस्तुतः तू है।

अज़ माह ता बमाही, हाकिम तुई ओ शाही।

अर्थ—चंद्रमा मछली तक अर्थात् आकाश से भूमि तक ऐ प्यारे! तू ही शासक और बादशाह है।

भूमि के प्रत्येक नस में मैं ऐसा भरा कि विचारी के उदर में मैं अब समा नहीं सकता, उसका शरीर फट रहा है, और मुझे धक्के खा कर वनस्पतिवर्ग के रूप में बाहर आना पड़ता है। पानी में जाकर शरण ली, सरोवर, झील,नदी सब मुझ मत्स्य (भगवान्) से ऐसे भरे कि उनके अपने लिये स्थान न रहा, उड़ गए, मैं ही मैं रह गया।

अजब यक दुर्रे-नायाबम कि दर दरियो न मे गुंजम।
चे तुफ़ाँ आहुए हस्तम कि दर सहरा न मे गुंजम॥

अर्थ—मैं एक ऐसा सुंदर मोती हूं कि किसी नदी में नहीं समा सकता, और ऐसा विचित्र मृग हूं कि वन में नहीं समा सकता हूं।

समुद्र के प्रत्येक बिंदु में जा धँसा, बहुतेरा अपने आप

को फूट-फूट कर भरा है, पर हाय ! वहां भी मुझे सिर छिपाने को स्थान नहीं । भावना सा समझ कर समुद्र ने पुष्प की भाँति मुझे अंक में लेना चाहा, आंखों में समोना चाहा, परंतु अंक ही टूट गया ।

दामाने-निगह तंग व गुले-हुस्ने तो बिसयार ।
गुलचीं बहार-तो ज़ दामाँ गिला दारद ॥

अर्थ—दृष्टि का दामन तो तंग है और तेरे सौंदर्य के सुमन बहुत हैं । तेरी शोभा के प्रसून (पुष्प) चुनने वाला पल्ले की तंगी (संकुचन) की शिकायत करता है ।

मेरी भरमार के कारण समुद्र के बंद बंद में कठोर पीड़ा होने लगी, बेचारा मरोड़े खा रहा है, लगातार अपने शरीर को उछाल उछाल मार रहा है, हाहा हाहा का कोलाहल मचा रहा है ।

एक आकाश का बुदबुदा है । मुझ प्राण रूपी वायु की समाई उस में भी कहाँ ? उस बिचारे का उदर मुझ को लेकर फूला फूला, आखिर कहाँ तक ? लो, वह भी फूट गया, मुआ घर टूट गया । बे घर का हूं । नख-शिख विलापी हूं । मेरे लिये कोई घर न रहा । अब कहाँ जाऊँ, क्या बनाऊँ ? पर हाय ! सुनाऊँ किसको ? दूसरा कोई नहीं, दूसरा कोई नहीं, एकमेवाद्वितीयम् (वहदहु लाशरीक) हूं ।

आप ही आप हूं यां गैर का कुछ काम नहीं ।

शब्द हुआ—जाओ जहन्नुम में ।

राम—जहन्नुम मेरे ध्यान ही करने से जहन्नुम को सिधारता (भागता) है । नितान्त नाश हो जाता है, नाम को भी नहीं रहने पाता । (आनंद स्वरूप हूँ) । समय मेरा ऐसा घोर

शत्रु है (कालानवच्छिन्न हूँ) कि जहन्नुम में जाऊँ तो जहन्नुम वहाँ नहीं रहता, मुझे पैर टिकाने को कहीं ठौर नहीं मिलता।

न मे गुंजम, न मे गुंजम,, व बहरो-बर न मे गुंजम।
व जन्नत दर न मे गुंजम, तहय्युर बहरे-मन हैराँ॥
निशानम बे निशाँ मेदाँ, मकानम लामकाँ मीख्वाँ।
जहाँ दर दीदाअम पिन्हाँ, मरा जोयंद गुस्ताखाँ॥

अर्थ—मैं समुद्र और पृथ्वी पर कहीं नहीं समाता हूँ, मैं स्वर्ग में भी नहीं समाता हूँ, आश्चर्य स्वयं मेरे लिये आश्चर्य युक्त है। मेरा पता बेपता समझो, और मेरा घर बेघर जानो। संसार मेरे नेत्र में निहित है, मुझको ढूँढनेवाले अविनयी (गुस्ताख, अशिष्ट वा अनर्थक) हैं।

ऐ रौशनी-ए-तबा तो बर मन बला शुदी।

अर्थ—ऐ भीतर के प्रकाश (बुद्धि)! तू मुझपर एक विपत्ति हो गया, यह क्या? मैं कर ही क्या रहा हूँ? देश(मकाँ)का देश में, काल का काल में, अपने स्वरूप में स्वतः स्थित मैं, किसी के सहारे (आश्रय) का इच्छुक नहीं, अपनी महिमा में क्यों न मस्त रहूँगा? पर हाँ! मेरे लिये एक स्थान अवश्य श्रुति ने निश्चित किया है, वहाँ मैं विश्राम करता हूँ।

शब्द हुआ—वह क्या?

राम—तुम्हारा अंतःकरण (हृदय)।

अर्ज़ो-समा कहाँ मेरी वुसअत को पासकें।
तेरा ही है वह दिल कि जहाँ हम समा सकें॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।

(यजु० कठ० १-४-१२)

अर्थ—अँगूठे मात्र वह पुरुष शरीर के भीतर स्थित है।

He is free and libertine
Pouring of his power the wine,
To every age and every race,
Unto every race and age,
He emptieth the beverage
Unto each and all
Maker and original
The world is the ring of his spells
And the play of his miracles
....

Thou seekest in globe and galaxy
He hides in pure transparancy,
Thou seekest in fountains and in fires.
He is the essence that inquires;
He is the axis of the star;
He is the sparkle of the spar;
He is the heart of every creature;
He is the meaning of each feature;
And his mind is the sky;
Than all its holds more deep, more high.

(Emerson)

अर्थ—वह (ज्ञान स्वरूप) स्वतंत्र और निरपेक्ष है। अपनी सुरा-रूपी शक्ति (आत्मिक जीवन) को प्रत्येक युगकी संतति को जी खोल कर दान करता है। वह प्रत्येक समय और मानुषी सन्तान तथा प्रत्येक व्यक्ति को हृदय खोल कर (यह मस्ती की मदिरा) पिलाता है। वह इस संसार का बनाने वाला और असल स्रोत (आदि कारण) है। संसार

उस के मंत्रों का (या जादू का) छल्ला (अंगूठी) है, और उस के चमत्कारों और कौतुकों का क्षेत्र है। तू (उस ज्ञानी को या आनंद स्वरूप को) लोक और परलोक में ढूँढता है, परन्तु वह (सुहृन्मित्र) विशुद्ध अंतः करण की निर्मलता में निहित है। तू उसको वैकुंठ के स्रोतों और यज्ञों आदि की अग्नि में ढूँढता है, परंतु वह स्वयं उस जिज्ञासु का स्वरूप विशेष है। वह ध्रुव-तारे का धुरा है, अर्थात् वह स्वतः अधिष्ठित है। वह प्रकाशों का भी प्रकाश है। वह प्रत्येक प्राणी का हृदय है। वह प्रत्येक चिह्न (रेखा) और तिल का अर्थ (सार) और अभिप्राय है, अर्थात् समस्त नाम और रूप उसी (सुहृन्मित्र-स्वरूप) का निरूपण करते हैं। और उसका अपना हृदय सुविशाल गगन है (जिसके भीतर लोक-लोकांतर घिरे हुए हैं)। और वह (परमात्म-स्वरूप) उन सब की अपेक्षा अधिक गंभीर और उच्चतम है। (एमर्सन)

बुलबुल अज़ गुल बिगुज़रद चूँ दर चमन बीनद मरा।
बुत परस्ती के कुनद गर बरहमन बीनद मरा॥

दर सुख़न पिनहा शुदम चूँ बूए-गुल दर बर्ग-गुल।
हर कि दीदन मैल दारद दर सुख़न बीनद मरा॥

अर्थ—बुलबुल यदि मुझको चमन में देख ले, तो फूल छोड़ दे। यदि ब्राह्मण मुझको देख ले, तो मूर्तिपूजा फिर कब करे। मैं बात में इस प्रकार निहित हूँ जैसे कि फूल की गंध फूल की पत्ती में। जो कोई कि मेरे देखने की कामना रखता है, वह वाक्यों में मुझ को देख ले।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

(पूर्व विषय "भारत का भविष्य" के अन्त में यह अंग्रेजी कविता थी, वह सहित अनुवाद के छपने से रह गई थी, अतएव उसे अब इस लेख के अन्त में दिया गया है)

Peace like a river flows to me,
Peace as an ocean rolls in me,
Peace like the Ganges flows,
It flows from all my hair and toes.

Through the arched door
Of eye-brows I pour;
And sit in the heaven of heart,
There well do I ride
In glory, and guide,
And no one can leave me and part.

अर्थ-शांति-सरिता बह रही मम ओर है।
शांति-सागर मन रहा हिल्लोर है॥
शांति, जैसी सुरसरी-धारा बही।
जो कि मेरे नख-शिखा से बह रही॥
वक्र भ्रुकुटि-द्वार से मैं देखता।
और हृदयाकाश में मैं लेटता॥
गर्व-संयुत मैं विचरता हूँ जहाँ।
और शासन भय-रहित करता वहाँ॥
छोड़ कोई भी मुझे सकता कहीं।
अथ च कोई पृथक् हो सकता नहीं॥

Merry wedlock, union,
On each or in heaven,
Is a dim foreshadowing symbol
Of my perfect embrace
Of the whole human race
And my clasp so firm and nimble.

As the golden lance,
Of the sun's sharp glance;
I pierce the hearts of flowers.
As the silvery ray,
Of the full-moon gay,
I hook up the sea to my bowers.

O Lightning! O Light!
O thought, quick and bright!
Come, let us run a race.
Avaunt! Avaunt! Fly! Fly!
But you can't
With me even keep pace.

O Earths and Waters,
My sons and daughters!
O Flora and Fauna!
All limitations flinging
Break forth into singing
Hosanna! Hosanna!
Om! om!! om!!!

अर्थ-स्वर्ग या संसार के जो व्याह हैं।
एकता के जो बड़े उत्साह हैं॥
वे हमारे सकल मानव जाति प्रति।
मिलन-छाया-मात्र ही हैं कलित अति॥
किंतु आलिंगन हमारा है विमल।
पूर्ण, सुदृढ़ और अतिशय ही चपल॥

स्वर्णकांता सूर्य-किरणों के सदृश।
बाणवत् या तीक्ष्ण भालों के सदृश॥
वेध देता हूँ हृदय से फूल को।
छेद देता हूँ तथा तरु-मूल को॥
पूर्णिमा के पूर्ण शशि-श्री की तरह।
रजतकांता शुभ्र ज्योत्स्ना की तरह॥
जोड़ देता हूँ लता के कुंज से।
क्षुब्ध सागर-लहरियों के पुंज से॥

ओ विभा! ओ अति चपल सौदामिनी!
ओ सु-चिंता शुभ्र अति द्रुतगामिनी!
आइए, हम लोग दौड़ें वेग से।
शीघ्र दौड़ें, तेज़ दौड़ें वेग से॥

किंतु तुम मेरे बराबर तीक्ष्ण भी।
दौड़ सकते हो भला बढ़कर कभी?॥
हे धरित्री, सिंधु, मेरे सुत-सुता!
देवि वन की! राजऋतु-श्री सुस्मिता!
छोड़ दो सब क्षुद्र निज परिछिन्नता।
गीत गाओ ॐ ॐ अभिन्नता॥

(भाग १० में जो विषय 'रामढँढोरा' छपा था और उस के अन्त में जो अंग्रेज़ी कविता सहित अर्थ के छपने से रह गई थी, उसे अब यहां दिया जाता है)

Peace immortal falls as rain drops,
Nectar is pouring in Musical rain,
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My clouds of glory, they March so gaily !
The worlds as diamonds drop from them,
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My breezes of law blow rhythmical, rhythmical,
Lo ! nations fall like petals, leaves ;
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My balmy breath, the breeze of Law,
Blows beautiful ! beautiful !
Some objects swing and sway like twigs.
And others like the dew-drops fall ;
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

My graceful Light, a sea of white,
An ocean of milk it undulates.
It ripples, softly, softly, softly ;
And then it beats out worlds of spray.
I shower forth the stars as spray.
Drizzle ! Drizzle !! Drizzle !!!

Om ! Om !! Om !!!

आती अमृत-शान्ति मेघ के बुंदों के सम।
झड़ी सुरीली लगी सुधा-रस बरसै अनुपम॥
रिम झिम ! रिम झिम !! रिम झिम !!!

मेरी द्युति के मेघ चले हैं सुन्दर कैसे।
है उनसे ये बिन्दु-लोक सब हीरा-ऐसे॥
रिम झिम ! रिम झिम !! रिम झिम !!!

मेरी नियम-समीर चले हैं सम से लेखो।
पत्र-पंखुड़ी-सदृश देश गिरते हैं देखो॥
रिम झिम ! रिम झिम !! रिम झिम !!!

मेरी स्वास सुगंध नीति की सुखद बयारी।
बहती हैं क्या मन्द ताप की हरनेहारी॥
मृदु शाखा सम वस्तु भूल झुक भूमें कोई।
ओस-बिन्दु-सम गिरै टूट कर भू में कोई॥
रिम झिम ! रिम झिम !! रिम झिम !!!

मेरी शोभन-प्रभा श्वेत-सागर-सी सोहै।
क्षीर-पयोनिधि, लहर लहर मानस को मोहै॥
मन्द मन्द जो मञ्जु तरंगे उसमें आतीं।
जल-फुहार-संसार मार बाहर कर जातीं॥
तारागण की झड़ी नीर-कण-सम, मैं आदिम।
रचता हूँ हर घड़ी, 'रिम' झिम ! रिम झिम !! रिम झिम !!!

ॐ.

अद्वैत ।

साधो ! दूर हुई जब होवे । हमरी कौन कोई पत खोवे ?
सिंध विषै रंचक सम देखें । आज नहीं पर्वत सम पेखें !
ऐसा कौन नशा तुम पीया । अब लौं आप सही नाहीं कीया !
चमके नूर तेज सब तेरा । तेरे नैनन काहे अँधेरा ?
तू तों आप भूपपति राजा । तू ही तीन लोक को साजा ॥

ऐ अद्वैत सागर की तरंग ! प्यारे नररूप नारायण (human face divine) नित्य-प्रसन्न-चित्त पुरुषों के कहकहे (अट्टहास) में, बुलबुल के चहचहे में, रुस्तम के युद्धीय घोष में, अत्याचार-पीड़ित के हृदयवेधी आर्तनाद में, कुसुम कलिकाओं की चटक (प्रस्फुटन) में, ललनाओं की मटक में, तेरी ही खटक है ! क्या बाज़ार और क्या गुलज़ार, क्या भिक्षुक का भिक्षापात्र और क्या राजमुकुट, तेरे दरबार में बार पाने को तरसते हैं । सुमन कपोलों की आवाज़ और बुलबुलों की ध्वनियाँ तेरी स्वीकृति (साक्षित्व) के भूखे और प्यासे हैं । कस्तूरी को सुगंध और प्याज़ को दुर्गंध का प्रमाणपत्र तेरा ही दिया हुआ है । एक पत्थर (हीरे) को जो चाटा जाय तो हलाहल विष है, यह उच्च पद तेरा ही प्रदान किया हुआ है । प्रियतमा के अधरों पर स्वाद (अर्थात् ठीक होने की स्वीकृति) तेरा ही दिया हुआ है ।

बादा अज़ मा मस्त शुद नै मा ज़ मै ।
हम ज़ माद़ाँ बूए-गुल आवाज़े-नै ॥

अर्थ--मदिरा हम से उन्मत्त है, हम मदिरा से नहीं। ऐसे ही बाँसुरी की सुरीली ध्वनि और सुमन की सुगंध हमारे कारण से ही है, ऐसा तू समझ।

Ye glittering towns with wealth and plenty crowned
Ye fields where Summer spreads profusion round
For me your tributary store combine
Creation's heir the world, the world is mine.

अर्थ--ऐ संपत्ति और समृद्धि से अभिषिक्त शोभायमान नगरो! ऐ खेतो! जिनमें गरमी की ऋतु चारों ओर प्रखरता से फैली हुई है! मेरे लिये तुम्हारे ये सहायक समुदाय इकट्ठे होते हैं। समस्त सृष्टि का उत्तराधिकारी यह संसार है, और यह संसार मेरा है।

(१) संसार का वह भाग जो श्रोत्र-इन्द्रिय से बोध होता है, आकाश; और (२) वह जो स्पर्शशक्ति (त्वच-इन्द्रिय) से बोध होता है, वायु; (३) वह जो चक्षु-इन्द्रिय से बोध होता है, तेज; (४) वह जो जिह्वा-इन्द्रिय से बोध होता है, जल; (५) वह जो घ्राण-इन्द्रिय से बोध होता है, पृथ्वी; यह समस्त पांचभौतिक जगत् (उपरि-लिखित पंच तत्त्वों से संयुक्त प्रपंच) अपने अस्तित्व के लिये तेरा भिक्षुक है। ओ प्यारे साक्षी (Subject)!

नेस्त ग़ैर अज़ हस्तिए- तो दर जहाँ मौजूद हेच।
ख़्वाह दर इनकार कोशो ख़्वाह दर इक़रार बाश॥

अर्थ--तेरे अस्तित्व के सिवाय संसार में कोई मौजूद नहीं है, इसमें चाहे तू इनकार कर और चाहे इक़रार कर।

तेरी ज्ञान (consciousness) रूपी किरणें नयन-झरोखों से निकलकर चित्र विचित्र पदार्थों को अस्तित्व में लाती हैं, तेरी विवेक रूपी रश्मियाँ कानों से निकलकर मधुर और कटु ध्वनियों को मौजूद करती हैं। ऐ लघु और महान के आधार! तेरे भरोसे वीर होकर प्रभात-समीर को अटखेलियाँ सूझती हैं।

भीषाऽस्माद् वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्चेंद्रश्च। मृत्युर्धावति पंचम इति॥
(यजुर्वेद तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली अ०८ मं० १)

अर्थ – जिस के भय से वायु चलती है, जिस से भीत होकर सूर्य उदय होता है, जिस के भय के मारे अग्नि और इंद्र धावमान रहते हैं, और जिस से भय भीत होकर मृत्यु मारा-मारा फिरता है, वह ब्रह्म तेरा ही अपना आप है।

जलवागाहे-रुखे-तो दीदए-मन तनहा नेस्त।
माहो खुरशेद हमीं आईना मीगरदानन्द॥

अर्थ – तेरे मुखमंडल की शोभा दिखलाने वाली केवल मेरी ही आँख नहीं, वरन् चंद्रमा और सूर्य भी यही दर्पण अपने सम्मुख लाते हैं (अर्थात् उनकी आँखों में भी तेरी ही शोभा है, या वह भी तेरे रूप को दिखलाने वाले हैं)।

तस्मै सर्वं ततः सर्वं स सर्वं सर्वतश्च सः। (वासिष्ठ)

अर्थ--उसी (परब्रह्म) के लिये यह सब (नाम-रूप-प्रपंच) है, उस से ही यह सब है, वह खुद यह सब है, और सब जगह वही है।

आश्चर्य है कि

जब वह जमाले-दिलफ़रोज़ सूरते-मिहरे-नीमरोज़।
आप ही हो नज़ारा-सोज़ परदे में मुँह छिपाए क्यों?

अग्नि के तेज से लकड़ी-पत्थर आदि यद्यपि जल उठें, किंतु अपने तेज से आग को कभी हानि नहीं पहुँच सकती। सम्राट् की तेजस्विता से मंत्री और श्रीमंत लोग यद्यपि भयभीत हो जायँ, किंतु अपनी तेजस्विता से सम्राट् कभी भय भीति नहीं होता। सिंह का गर्जन और नरसिंह की ललकार, तरवार के जौहर और सर्प की फुफकार, तपस्वी की धमकी और न्यायाधीश की फटकार, तेरे ही प्रकाश हैं। तू उनसे panic Stricken (भयभीत) क्यों है ? असमंजस (शशो-पंज) में क्यों पड़ता है ? उनको "घर की बिल्ली घर को म्याऊँ" वाला हिसाब बनाने की आज्ञा क्यों दे रहा है ?

दरशनाए-ग़मज़ा जाँस्तां नाविके-नाज़-ए बनाह।
तेरा ही अक्से-रूख़ सही, सामने तेरे आए क्यों ?

प्यारे ! ज़रा अपने आप में आकर तो देखो। भय कैसा ? बला का क्या काम ? विपत्ति का क्या नाम ? शोक और क्रोध, दुःख और पीड़ा का प्रयोजन क्या ?

मस्तो-खराब मी रवम, बे सर व पा हमी रवम।
बीम नदारम अज़ बला, तन तलमला तला तला॥
राहे-बक़ा हमी रवम, चूँ शहे-चरख़ मुफ़रदम।
ग़म न खुरम ज़माना रा, तन तलमला तला तला॥

अर्थ—मैं मस्त और दीवाना बनकर और बेशिर-पैर हुआ फिरता हूं। मुझे दुःखसे कुछ भय नहीं, तन तलमला तला तला। अमर लोक के मार्ग पर मैं चलता हूँ, और स्वर्ग के सम्राट् के समान मैं एक हूँ। मुझे समय की ज़रा चिंता नहीं, तन तलमला तला तला (सारंगी के ताल का स्वर)

आनंदं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति॥
(य० तै० उ० ब्र० अ० ४ मं० १).

आत्मानंद वाले को भय और आशंका कैसी ?

रुपया-पैसे के हिसाब-किताब में, तर्क और तत्त्वज्ञान के गोरखधंधों में, और विज्ञान-गणित के इंद्रजाल में औरों की देखा देखी (भेड़चाल) बारीकियाँ छांटते हो, मू-शिगाफियां (छिद्रान्वेषण, बाल की खाल उतारने का क्रम) करते हो, पर (बड़ जितना नहीं, किन्तु) पहाड़ जितना मोती (दुर्र-यतीम, असली अपना आप) लुप्त कर बैठे हो। आश्चर्य है

निहाँ चूँ मान्द आँ राज़ कि बूदा शमाए-महफिलहा।

अर्थ – वह रहस्य जो सभा की ज्योति बन चुका है, कब तक छिपा रह सकता है। तात्पर्य यह है कि जो भेद साधारण सभा में प्रकट किया गया, फिर उसका छिपा रहना असंभव है।

मेरे प्यारो ! अपनी लुप्तीकृत (गुम करदा) अँगूठी को एक बेर पा लो, धरती-आकाश में शासक तुम ही हो।

सुलेमाना बियार अंगुश्तरी रा।
मुती ओ बंदाकुन देवो-परी रा॥
ज़ चाहो आब च रन्जूर मॉदेम।
रवाँ कुन चश्मा हाए कौसरी रा॥
ज़ सूरतहाय ग़ैबी परदा बरदार।
मुनव्वर कुन सराए-शशदरी रा॥

अर्थ—ऐ सुलेमान ! तू अपनी अँगूठी ला, और देव और ..यों को अपना दास बना। हम इस संसारी पानी व कुएँ से बीमार हो गए हैं, तू अपने स्वर्गीय सोते को जारी कर। छिपी हुई सूरतों से परदा उठा और छे द्वारोंवाले घर (अर्थात् शरीर) को प्रकाशित कर।

ऐ भोले साधक ! सदाचारिक शिक्षा के ऐडवोकेट ! कहाँ

तक पहरा दोगे? कहाँ तक भय और आशा की व्यवस्थाओं से "हुकम दर*" करोगे? कहाँ तक नरक और विपत्ति के बंदीघरों से धमकाओगे? कहाँ तक तरह-तरह की गीदड़-भबकियाँ सुनाओगे? जब तक रात (मूढ़ता, अविद्या) दूर न होगी, तब तक चोरी, जारी, जुआ, मद्य-पान आदि कभी बंद न होंगे, लाख यत्न पड़े करो।

Deeds of darkness can not be avoided in the dark.

अर्थ—जो कर्म अंधकार या अज्ञान के हैं वह अँधेरे में बंद नहीं किए जा सकते। तात्पर्य यह कि मूढ़ता के काम मूढ़ता में दूर नहीं होते, वरन् ज्ञान के प्रकाश से दूर होते हैं।

सच्ची विद्या (Light, Truth) रूपी सूर्य निकलने दो। पाप और पातक अँधेरे के साथ हरण हो जायँगे। अफ़लातून ने क्या सच कहा है, Knowledga is virtue, अर्थात् ज्ञान ही शुद्धि रूप है। सूर्य के प्रकाश के आगे दीपक आदि के प्रकाश कभी स्पष्ट नहीं हो सकते, ज्ञानवान् के आनंद रूपी सूर्य के सम्मुख विषय-सुख रूपी दीपक क्योंकर जल सकते हैं? उस Orpheus (ओरफ़्यूज़) के ईश्वरीय ध्वनियों के होते बिचारी Sirens (साइरेंस) की सारंगी क्या कर सकती है?

"What woman will you find,
Though of this age the wonder and the fame,

---

* हुकमदर = who comes there कौन आता है? सेना में रात को पहरा देते समय चौकीदार लोग किसी को आते देखकर चिल्लाते हैं। इसके उत्तर में पहरा वाला चोर वा साधु पहचान जाता है।

On whom His leisure will vouchsafe an eye
On fond desire?......................................
....
How would one look from his majestic brow,
Seated as on the top of virtue's hill,
Discountenance her despised, and put to rout,
All her array!"

(Milton.)

अर्थ—ऐसी कौन सी स्त्री तुम्हें मिलेगी, चाहे वह इस समय की विचित्र और प्रसिद्ध ही हो, जिसपर उसकी (अर्थात् ईसा मसीह की) फुर्सत (अवकाश) वा उल्लास पूर्ण चाह की दृष्टि डालेगी ....
उसके (ईसा मसीह के) उज्ज्वल ललाट से मानो भलाई की पहाड़ी की चोटी पर बैठे हुए कोई व्यक्ति किस दृष्टि से देखेगा? घृणा से उसकी (स्त्री की) परवा न करेगा और उसके समस्त मनोमोहक आकर्षणों को पूर्ण पराजित करेगा।

रंगदार महताबी का उजाला (प्रकाश) काले तवे पर भी पड़ जाय तो उसे जगमगा देता है, प्रकाशित कर देता है; वैसे ही प्रेमपात्र (माशूक़ा) के मल, रक्त, हाँड़, मांस भरे चर्म पर प्रेमी की दृष्टि पड़कर उसे ज्योतिर्मय और कांतिमान बना देती है।

A thing giveth but little delight
That never can be mine." (Wordsworth)

अर्थ—जो वस्तु कि बहुत कम आनंद देती है, वह मेरी कदापि नहीं हो सकती।

बादा अज़ मा मस्त शुद नै मा ज़ मै।
हम ज़ मादाँ बूए-गुल आवाज़े-नै॥

अर्थ—मदिरा हमसे मस्त होती है, हम मदिरा से नहीं, सुमन की सुगंध और बंसुरी की ध्वनि हम से ही जान।

वह महात्मा जो इस सौंदर्य और उत्तमता को जानता है और अपने स्वरूप को पहचानता है, उस ज्योतियों की ज्योति के सामने विषय-भोग के भावों के खद्योत (fire flies) भला किस प्रकार चमकेंगे?

ऐ प्यारे! सूर्य तेरा अपना आप है। तेरी आँख खोलने पर सूर्य प्रकट होता है, आँखें बंद करके अविद्या की अँधेरी रात क्यों बना रक्खी है?

मातः, किं यदुनाथ, देहि चषकं, किं तेन पातुं पयः।
तन्नास्त्यद्यकदास्ति वा निशि निशा का, वांधकारोदये।
आमील्याक्षि युगं निशाप्युपगता देहीति मातुर्मुहुः।
वक्षो जां शुक कृष्णोद्यतकरः कृष्णस्तपुष्णातु नः॥
(लीलाशुक)

तात्पर्य—

कृष्ण—मैया! मैया!

यशोदा—क्यों मेरे लाल, क्यों?

कृष्ण—मुझे एक कटोरा दो, जल्दी!

यशोदा—उसे क्या करोगे? कटोरे से भी कोई खेलता है? वह खिलौने पड़े हैं, उनसे खेलो।

कृष्ण—(अदा से गर्दन निहुराकर) मैं खेलने के लिये थोड़े ही माँग रहा हूँ। हम तो दूध पिएँगे।

यशोदा—लाल ! अभी से दूध कहाँ ? यह कोई समय है दूध का ? दूध तो है नहीं, कटोरा क्या करोगे ?

कृष्ण-(दुलार से झल्लाकर) ऊँ ऊँ ! और कब दूध होगा ?

यशोदा—अभी तुम मक्खन खाओ और रात होने फिर पेट भरके ताजा दूध पी लेना।

कृष्ण—(ओंठ बिसूर कर) हाय, रात कब पड़ेगी ?

यशोदा—जब अँधेरा होगा ?

यह सुनकर नन्हें कृष्ण ने झट आँखें मीच लीं, और फुरती से हाथ फैलाकर ज़ोर से कहने लगे-"ला दूध देदे, अँधेरा हो गया। ला दूध दे दे, रात हो गई।"

माता अपने बच्चे की यह चतुरता देखकर विस्मित रह गई। खिलखिलाकर हँस पड़ी, और प्रेम से विह्वला होकर बच्चे को छाती से लगा लिया और प्यार करने लगी।

वही कृष्ण (परमात्मा) आँख मीचकर दिन को रात बनानेवाला, क्षीर समुद्र का स्वामी, दूध के कटोरे के लिये रोनेवाला तुम्हारे "शिर पर, आँखों पर और हृदय पर बैठकर लीला कर रहा है; वही चोरों का लार्ड (तस्कराणां पतिः) तुम्हारे मन और बुद्धि की कोठरी (गुहा) में छुपकर इंद्रिय-आदि की पुतलियाँ नचा रहा है; वह कृष्ण तुम्हारा आत्मदेव है; तुम ही हो; आँखें बंद करके रात बनाने की मख़ौलबाज़ी छोड़ो।

यह हँसी खूब नहीं ओ गुले-ख़दाँ हम से।

हँसी की खसी कर रहे हो। ओ शिवशंकर! तेरे सामने तेरी लापरवाही मूर्तिमान होकर "कामदेव" के रूप में प्रकट हो तुझपर तीर और तुफ़ंग बरसा रही है। खोल अपना तीसरा नेत्र (ज्ञान चक्षु), और इस कामदेव को भस्म कर।

न मारा आपको जो ख़ाक हो अकसीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीरगर! मारा तो क्या मारा॥

ओ! सूर्यरूप मनुष्य! आप ही अविद्या के बादल बनाकर अपने प्रकाश को मत छिपा ले। क्यों नहीं तुम से प्रकाश के स्रोते प्रतिक्षण चारों ओर जारी रहते? ओ सत्य के जिज्ञासु! तेरी सुगंध से संसारोपवन महक जाना चाहिए, तेरे शुद्ध जीवन के प्रभाव की बदौलत शांति और आनंद (Peace on earth and good will) से संसार का वायु सुगंधित हो जाना चाहिए। जैसे दीपक से प्रकाश फैलता है, वैसे ही तुझ से आनंद चारों ओर बरसते रहना चाहिये। स्त्री या पुरुषों की छातियों में कामदेव के उपद्रव, एवं ईर्षाद्वेप की आँधियों को तेरे अमृत बरसाने वाले दर्शनों से ही रुक जाना चाहिए, जैसा कि भगवान् दत्तात्रेय को दूर से दो एक बेर देखने से एक प्रथमश्रेणी की पुंश्चली स्त्री (वेश्या) का जीवन पलटा खा गया था; हृदय को सुख और आँखों को शीतलता देनेवाले दर्शनों से शांति की ऐसी वर्षा हो गई कि मानों भयानक आँधी का तूफ़ान दूर हो गया; विचारों के मन की कल्मप और कलुषता की धूलि आदि सब एक दम बैठ गई (अर्थात् दूर हो गई)।

हर ज्ञान प्रदीप सदा लशके।
मन मंदिर योगिन के बस के॥
बहु मोह उदय जो हृदय तिनके।
तमपुंज वही ताको हनि के॥
अति लोल अनंग पतंग महा।
छिन माहिं स्वाभाविक ताहिं दहा॥
निह काम समूह गुणाअदिपै।
सों स्नेह, स्नेह वही अरपै॥
जिनके अति भाल के भाग भले।
अस दीपक तां मनधाम जलै॥

अर्थ—ज्ञान का दीपक सदैव जलता है ज्ञानियों के मन मंदिर में स्थिर होकर। और यदि उनके हृदय में मोह उदय होना चाहे, तो उसके अंधकार-समूह को वह दीपक निवारण करता है। काम रूपी पतंग महा चपल और चंचल है जो क्षण क्षण में अपने आप ही इस ज्योति में पड़कर जलता है। निष्काम कर्म इस दीपक की वाती है, और प्रेम रूपी तेल इसमें खर्च होता है। जिनका भाग्य अति उत्तम बलवान् होता है, उन्हीं के मनोमंदिर में यह प्रदीप जलता है।

अला ऐ गौहरे बहरे-सुसफ़्फ़ा।
कि दर आलम तुई पिन्हाँ व पैदा॥

अर्थ—खबरदार, ऐ निर्मल सागर के मोती! संसार में गुप्त और प्रकट तू ही है।

स्वच्छ और श्वेत बिल्लौर के पास यदि नीला कपड़ा पड़ा हो तो बिल्लौर नीला दृष्टिगोचर होगा, यदि पीला काँच का टुकड़ा पार्श्व में धरा हो, तो बिल्लौर पीला दिखाई देगा,

लाल वस्तु के पास होने से लाल मालूम होगा । वास्तव में बिल्लौर सब रंगों से रहित है। कोई द्रव्य (जल वा गैस) अपनी सूक्ष्मता वा कोमलता के कारण गोल ग्लास में गोल सूरत ग्रहण कर लेगा, चौड़े कटोरे में चौड़ा और चौकोर बर्तन में चौकोर हो जायगा। लोहे की लंबी सलाख आग में लाल गर्म की जाय तो उसके साथ मिलकर आग लंबी दिखाई देगी, गोल तवा भट्टी में तपाया जाय तो तवे से मिलकर आग गोल मालूम होगी, चौड़ी वस्तु में प्रविष्ट होकर आग चौड़ी दिखाई देगी, वस्तुतः आग का कोई आकर नहीं। सब नेत्रोंवाले इस बात को मानते हैं, और दृक्शास्त्र (optics) ने सिद्ध कर दिया है कि महल-अटारी बाग-बगीचे जो कुछ देखते हो, वस्तुतः प्रकाश ही को तुम देखते हो; प्रकाश ही की किरणों मे सारा संसार दृष्टिगोचर होता है; यही प्रकाश "हरा, लाल, पीला, बना हुआ है, और तुर्रा यह कि अपने स्वरूप में बिलकुल बेरंग है। अब जिस प्रकार बिल्लौर, द्रव्य (जल वा गैस), अग्नि और प्रकाश अपनी स्वच्छता के कारण नाना प्रकार के रंग ग्रहण करते हैं; ठीक उसी तरह प्रकाशों का प्रकाश आपका असली अपना आप (आत्मदेव) अपनी स्वच्छता के कारण कहीं कुछ और कहीं कुछ होकर नजर आता है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्चय ।
(यजु० कठो० अ० १ व० ५ मं० ९)

अर्थ—जैसे एक ही आग समस्त ब्रह्मांड में प्रविष्ट होकर प्रत्येक से अभेद हुई नाना रूप होगई है, ऐसेही एक आत्मा

जो सब सृष्टि के भीतर है प्रत्येक से अभेद हुआ नाना रूपों में होगया है।

यार को हमने जा बजा देखा।
कहीं बंदा कहीं खुदा देखा॥
सूरते-गुल में खिलखिला के हँसा।
शकले-बुलबुल में चहचहा देखा॥
कहीं है बादशाहे-तख्त-निशीं।
कहीं कासा लिये गदा देखा॥
कहीं आबिद बना कहीं ज़ाहिद।
कहीं रिंदों का पेशवा देखा॥
करके दावा कहीं अनलहक़ का।
बर सरे-दार वह खिंचा देखा॥
देखता आप है सुने है आप।
न कोई उसके मासिवा देखा॥
बल्कि यह बोलना भी तकल्लुफ़ है।
हमने उसको सुना है या देखा॥

गर नूर है तो वह है और नार है तो वह है।

हर रंग में बसता है, तो भी ये विलास (कौतुक) सब दिखावटी ही हैं, वास्तविक नहीं। वह अपने स्वरूप से शुद्ध पवित्र है, सब से न्यारा है। माना कि बुद्धि और प्राण उसी के अस्तित्व सागर के बुलबुले से हैं, या उसी में सर्प की भाँति भासते हैं, तौ भी वह निर्लेप है, शुद्ध है। वह (आपका असली अपना आप) शरीर नहीं है, इंद्रिय नहीं है। वह प्राण नहीं है, बुद्धि नहीं है। पर हाय! इस शुद्धता, सत्यता और व्यापकता पर वारे जाऊं कि प्रकाश, बिल्लौर आदि की भाँति जो मिला उसी के होगए, जिससे भेंट हुई उसी से

अभेद हो गए। शरीर के साथ एक होकर कहने लग पड़े कि "मैं बदरिकाश्रम जाऊँगा, श्री अमरनाथ से हो आया, इत्यादि।" प्राणों से मिलकर उनके गुण अपने में गिन लिए, और बोल उठे—"मुझे भूख प्यास लग रही है, दूध लाओ।" बुद्धि से प्रणय हुआ तो बस ऐसा कि उस दासी को अपनी राज-मोहर सौंप दी, जो कुछ उससे उल्टा सीधा हुआ, मान बैठे, मैंने किया है, जैसे "मैंने क्या अच्छा प्रबंध लिखा है, यह युक्ति कैसी उत्तम सोची है, इत्यादि।" ऐ भोले महेश, मेरे प्राण! बलिहारी! तुम्हारी शुद्धता, व्यापकता और कोमलता पर बलिहारी! पर ज़रा देखना! वह बात मत करो "जिस लाई गिल्लाँ उसी नाल उठ चल्लाँ।" बुद्धि, प्राण, मन इंद्रिय आदि का कुसंग छोड़ो और अपने आप को कलंक मत लगाओ।

बाम पर नंगे न जाना तुम शबे-महताब में।
चांदनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा॥

असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः।
सच्चिदानंद रूपोऽहमहमेवाहमव्ययः॥ (ब्रह्मवल्ली)

अर्थ—मैं असंग हूं, मैं असंग हूँ अर्थात् मैं नितांत असंग हूँ, मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, और मैं ही अविनाशी आत्मा हूँ।

तुम सच्चिदानंद घन हो, देह प्राण आदि क्यों बने फिरते हो? असत्, जड़, दुःख रूप कहलाने में क्या स्वाद रक्खा है? प्यारे! इस आत्महत्या से क्या लाभ? "रक्त, स्वेद, वीर्य, मूत्र और थूक" इन पँच जलों के कीचड़ (पँच+आब=पञ्जाब, शरीर) में क्यों फँसे हो? विचित्र दिल्लगी है।

तो चुनी निहाँ दरेग़े कि महे-वज़ेरे-मेग़े।
बदरां तो मेग़-तन रा कि मही व खुशलक़ाई॥

अर्थ–शोक ! तू ऐसा छुपा हुआ है जैसे कि चंद्रमा बादल के नीचे छुपा होता है। तू इस शरीर रूपी बादल को फाड़ डाल, क्योंकि तू चंद्रमा है और बहुत ही सुंदर है।

जिज्ञासु—कुछ समझ में नहीं आता, भला हम जीव (पापी बंदे) सत् चित् आनंद क्योंकर हो सकते हैं? त्राहि त्राहि! ऐसी नास्तिकता! समस्त सृष्टि तो पुकारती है कि हम परतंत्र और अल्पज्ञ हैं, और आप ज़बरदस्ती हमें ब्रह्म (शुद्ध परमात्मा) बतलाते हैं। ईश्वर की दोहाई! ईश्वर की दोहाई!

ज्ञानी—प्यारे! महत् आश्चर्य है कि आप ब्रह्म के सिवाय और कुछ भी नहीं हो, सरासर ब्रह्म ही ब्रह्म हो, और फिर इनकार करते हो। प्रत्येक मनुष्य आकाश के कर्ण को बधिर (बैहरा) कर देनेवाले उच्च स्वर से पुकार रहा है कि "मैं पवित्र हूँ, सच्चिदानंद हूँ, अमर हूँ, एक ही हूँ, सर्वोपरि हूँ, चैतनघन हूँ, इत्यादि।" तिसपर भी आप इनकार करते (भागते) हैं।

ग़ज़ब करते हो ज़ालिम, आग पानी को लगाते हो।

जिज्ञासु—यह और भी अनूठी सुनो। औरों को तो रहने दीजिए, बंदा अपनी बात धर्मतः कह सकता है कि कभी भूले से भी न कहा होगा कि "मैं ब्रह्म हूँ"। बताइए तो सही कि आपके सामने कब ईश्वरीय दावा किया था, और किस भाषा में किया था?

ज्ञानी—संसार के कुरुक्षेत्र में आप और शेष सब लोग

"शिवोऽहम् शिवोऽहम्" का गीत कर्म की भाषा से गा रहे हो, चाहे चर्म-जिह्वा से आप इनकार कर जाओ। पर मौखिक बक झक की अपेक्षा कर्म का ढिंढोरा अधिक विश्वास योग्य होता है। "Acts Speak louder than words"। एक नवयुवक मदिरा पी कर मस्त पड़ा था। उसके पिता ने आकर उसे धिक्कारना आरंभ किया। नवयुवक स्पष्ट मुकर गया और सोगंध खा खाकर बोला कि "मैंने मदिरा छुई तक भी नहीं"। परंतु मस्ती भी कहीं छुपी रह सकती है? नशा आँखों में बोल रहा था, गंध अपने आप मदिरा की रिपोर्ट दे रही थी। नहीं-नहीं कर ही रहा था कि उलटी होगई, लो अब क्या छुपाओगे?

नहीं छुपता मिसाले-बू छुपाए लाख पर्दों के।
मज़ा पड़ता हैं जिस गुल पैरहन को बेहिजाबी का॥

जिह्वा से लाख-लाख छुपाना चाहा, पर कर्मों ने उसे प्रकट कर ही दिया। ऐ प्यारे! चिदानंदघन तेरा आत्मा है, तू इस कस्तूरी को चाहे जितना छुपा, छुपेगी कभी नहीं।

(१) युधिष्ठिर से प्रश्न किया गया कि "आश्चर्य क्या है?" तो उसने उत्तर दिया—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममंदिरम्।
शेषाः स्थातुमिच्छंति किमाश्चर्यमतः परम॥ (महाभारत)

अर्थ—दिन-दिन (सहस्रों) प्राणी यमराज के लोक को चले जा रहे हैं (अर्थात् मर रहे हैं), किंतु जो (मृत्यु से) बचे हुए हैं, वे यहाँ (इस संसार में) रहने की इच्छा करते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या होगी?

यह जानते भी हैं कि जो पैदा हुआ है, वह अवश्य मरेगा

ज़िंदगी मौत थी इक उम्र में साबित यह हुआ।
मेरा होना था फ़क़त मेरे न होने के लिये॥

तिसपर भी किसी को अपनी मृत्यु का विश्वास नहीं आता। मुँह से यद्यपि प्रति समय मृत्यु की रागनियाँ पढ़े गाएँ-"यह दुनिया है चार दिहाड़े (दिन) एथे रहना नाहीं,इत्यादि" किंतु व्यावहारिक रीति पर इसके प्रतिवाद (रद्द करने)में ज़रा न्यूनता नहीं करते, उद्योग-धंधों का सिलसिला बराबर फैलाते जाते हैं, और अपने बुढ़ापे या त्याग (निःसंबन्धता) के खयाल को मिटाकर इस लापरवाही से मृत्यु-सागर में लोभ का लंगर डाल बैठते हैं कि मानो मृत्यु की आँधी कभी आनी ही नहीं। इससे बढ़कर विस्मय-आविष्ट और क्या हो सकता है?

जीर्यंति जीर्यतः केशा दंता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीवनाशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥

अर्थ–वृद्ध मनुष्य के बाल और दाँत तो मुर्भा जाते हैं, किंतु द्रव्य और जीवन की चाह फिर भी नहीं मिटती।

बफ़िकरे-नेस्ती हरगिज़ नमी उफ़्तंद मग़रूराँ।
अगर्चिः सूरते-मिक़राज़े-ला दारद गिरेबांहाँ॥

अर्थ-घमंडी लोग नास्ति (मृत्यु) की चिंता में कदापि नहीं पड़ते यद्यपि उनकी गर्दन ला (ﻻ=नास्ति,) जैसी कैंची का स्वरूप रखती है।

आख़िर इसमें भेद क्या है? एक दिन शरीर के नाश हो जाने में तो कुछ संदेह ही नहीं, फिर मरने का क्यों विश्वास नहीं आता? प्यारे! इसके सीधे-सीधे यह अर्थ हैं कि तुम्हारे स्वरूप में "मरना" नाम को भी नहीं, तुम्हारा आत्मा अमर है, अकाल है, तुम्हारा असली अपना आप सत्स्वरूप है।

न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (गीता)

शरीर के मारे जाने से (आत्मा) का नाश नहीं होता॥

"Death hath not touched it at all
Dead though the house of it seems!"

अर्थ—मृत्यु ने कभी उस आत्मा को स्पर्श नहीं किया, यद्यपि शरीर या उसका निवास (मंदिर) मृतक प्रतीत होता है।

व पोशंदए-जामा जानस्त नाम।
ख़याले-फ़ना गश्तनश हस्त ख़ाम॥

कपड़े (शरीर रूपी वस्त्र) पहननेवाली आत्मा है, उसके विनाश होने का ख़याल ख़ाम (कच्चा) है।

तुमको मरना तो कभी है नहीं। मृत्यु की तर्क-वितर्क (प्रश्नोत्तर) में व्यावहारिक विश्वास क्यों कर जमे? इस लिये तुम्हारा प्रत्येक काम यह ढफ़ बजा रहा है।

सब्त अस्त बर जरीदए-आलम दवामे-मा।
संसार के दफ़्तर पर हमारी ही सदैवता लिखी है।

(२) और सुनिए, मुँह से तो "मैं पापी, मैं पापी" की गप हांकते नहीं लज्जित होते, वरन् कभी-कभी इस निठुर विचार को feeling (प्रेम) के पवित्र वस्त्रों में सजाते हैं। जैसे—

चार चीज़ आवुर्दाअम शाहा कि दर पेशे-तो नेस्त।*
आजिज़ी ओ बेकसी उज़रो-गुनाह आवुर्दा अम॥

अर्थ—ऐ बादशाह! मैं चार वस्तुएँ ऐसी लाया हूँ जो तेरे पास नहीं हैं; अर्थात् अधीनता, मित्र हीनता, क्षमा-प्रार्थना और अपराध।

---

* यह याद रहे कि इस अधीनता पूर्ण पद्य में आनन्द का हिस्सा वहीं है, जहाँ लेखक ने साकार ईश्वर (personal god) पर अपनी श्रेष्ठता (अधिकता) जतलाई है।

किंतु व्यावहारिक रीति पर बराबर इसके विरुद्ध यह जतलाने वाले व्याख्यान दिए जाते हैं कि "मैं निर्लेप हूँ, शुद्ध हूँ, असंग हूँ, पवित्र हूँ।" आखिर सत्यता को कोई कहां तक धोका देगा ?

सत्यमेव जयति नानृतं=सदैव सत्य जीतता है, मिथ्या नहीं।
कूड़ा निखुट्ट नानका ओड़क सच्च सही।

जब कोई छोटी सी भूल भी दिखला दी जाय, तो बुरा लगता है, सहा नहीं जाता; कोई अपराध प्रकट कर दिया जाय तो बुरा मानने को तैयार हैं-"हाय, हमारी इज़्ज़त में फ़रक़ आगया"; जब किसी प्रकार के अप्रिय वाक्य अपने विषय में सुने जायँ तो वक्ता को चट नोटिस दिया जाता है कि अपने वाक्यों को वापस ले लो (withdraw your statement), अन्यथा अभियोग चलाया जायगा। एक छोटे से बच्चे को अपराधी ठहराया जाय तो बड़बड़ाने लगेगा; एक सामान्य नौकर को दोष लगाया जाय तो अप्रसन्न हो जायगा।

इस प्रकार के ढंग से साफ़-साफ़ यह अर्थ टपकते हैं कि हर कोई अपने स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध है, निर्लेप है, शरीर या बुद्धि के अपराधों और पापों से कभी उस पर दोष नहीं आ सकता। मुरग़ाबी (पक्षी विशेष) चाहे गँदले पानी में रहे, चाहे गंगाजल में, कभी भीगती नहीं, वैसे ही आत्मा चाहे पवित्र बुद्धि, शरीर में देखा जाय, चाहे अपवित्र में, सदा शुद्ध और असंग है।

किं गंगांबुनि बिंबितेऽम्बरमणौ चांडालवाटी पयः।
पूरे वांतरमस्ति कांचन घटि मृत्कुंभयोर् वांबरे॥

प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरंग सहजानंदाववोधांं बुधौ।
विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रमः॥
(शांकर मनीषा पंचक)

अर्थ—गंगाजल में या चांडाल की गली के गड्हे में, या सोने के वर्तन में, या मिट्टी के घड़े में जब सूर्य अपना प्रतिविंव डालता है, तो उस प्रतिविम्वित सूर्य में भला क्या भेद हो सकता है? अर्थात् प्रतिविंव में कोई विभेद नहीं हो जाता, चाहे पानी किसी प्रकार का क्यों न हो। फिर उस सहजानंद और ज्ञान के समुद्र रूप प्रत्यगात्मा में तुझे ऐसी भ्रांति और भ्रम क्यों कि यह ब्राह्मण है और यह चांडाल है?।

सूर्य गंगाजल में प्रतिविंवित होने से अधिक पवित्र नहीं हो जाता और मदिरा में चमकने से अपवित्र नहीं हो जाता; वैसेही आत्मा (अर्थात् अपना वास्तविक स्वरूप) शरीर और बुद्धि के ख़राव होने से ख़राव नहीं होता है और उनके गुणों से लाभान्वित होकर उन्नति नहीं पकड़ता। वह पुरुष जिसने इस तत्त्व को जाना है और अपने निज स्वरूप में इस प्रकार आरूढ़ होगया है जैसे सर्व-साधारण लोग अपने आप बुद्धि या शरीर में घर कर वैठते हैं, वह पुरुष अमर है, वह पुरुष सर्वोपरि वा सर्वोत्तम स्थानवाला है।

जहां जाते हुए हिर्स ओ हवा के होश उड़ते हैं।

क्यों नहीं अपने इस राज्य को सँभालते? औरों के लेख और व्याख्यान पढ़ते सुनते जीवन वीत गए, ज़रा अपने जादू भरे लेक्चर को भी प्रेम के कानों से सुनो जो हर समय दे रहे हो; और दे भी रहे हो वर्तमान भाषा में। ज़रा सोचो, कोई व्यक्ति अपने ऊपर दोष आने देता है? खुल्लम खुल्ला

अपराधी सिद्ध हो चुका हो तो भी अपने अपराध का धब्बा किसी अन्य के मत्थे लगाने का यत्न करेगा। अपने तेवरों से, आवेश से, अंतःकरण से और जिह्वा से चिल्ला २ कर पुकारेगा कि मैं बेदाग़ हूँ, मैं अपाप हूँ। सरकारी न्यायालयों में जहां भलाई बुराई को देखने वाले न्यायाधीश विराजमान हों, वहां ऐ सत्य (Truth) के परखने वाले साक्षी ! ज़रा प्रकट होकर देख ले; जज पूछता है—"तुमने अमुक अपराध किया ?" अपराधी बोलेगा—"श्रीमन् ! कभी नहीं, बिलकुल नहीं, कदापि नहीं।" यदि अपराधी के विरुद्ध पर्याप्त प्रमाण और साक्षी मिल जायँ और उस पर चार्जशीट (अपराधनिश्चय-पत्र) लगाया जाय, तो भी अपराधी अभियुक्त तो वास्तव में सच्चा ही है, उस न्यायाधीश का विवेक अभियोग की वास्तविकता से लड़ा नहीं, अपील दायर हो; किंतु अपील-वाले ने भी अपराधी ठहराया, तो "पक्षपात हुआ है, उत्कोच (रिश्वत) और एकांगता (लिहाज) चल गई है।" बंदीघर में भेज दिया गया, तो इसका कारण यह नहीं था कि अपराधी दोष-संयुक्त था, वरन् "सरकार के घर में न्याय नहीं, अदालत अंधी है।" संसार बुरा कहता है तो सारा संसार (hydra-headed mob) पागल है, किंतु मैं निष्कलंक हूँ।

हाँ, ऐ कलंकित मनुष्य ! तू वस्तुतः निष्कलंक है, बिलकुल निर्दोष है। सूर्य के साथ उल्लू तो कदाचित् कभी आँख लड़ा भी ले, किंतु तेरे पवित्र स्वरूप के समक्ष दोष बिलकुल नहीं ठहर सकता। हाँ, यदि तेरे यहाँ चूक है तो यह है कि ला परवाही से अपने शुद्ध और अनंत स्वरूप को भूलकर तू अपने आपको अपवित्र शरीर और बुद्धि आदि ठान बैठा है, वरन् अपने भीतर की पवित्र वाणी को (जो तुझे यह

जतलाती है कि तू अमर और शुद्ध है) बिगाड़कर उसे उल्टे अर्थ दे रहा है, जैसे एक बीमार मित्र को देखने के लिए आए हुए एक बधिर (बहरे) ने किया था ।*

---

* एक बहरे को खबर मिली कि उसका मित्र बहुत बीमार है । उसकी कुशल-क्षेम लेने को जाने का संकल्प किया। तत्काल यह विचार आया कि रोगी बेचारा धीमी आवाज़ से बोलेगा और हमें पहले ही ऊँचा सुनाई देता है, उसकी धीमी आवाज़ समझने में बड़ी कठिनता होगी, बार बार "हूँ ? हायँ" किया तो बुरा मालूम देगा; सब कहेंगे, कहाँ से मग़ज़ खाने आ गया । इस से अच्छा होगा, थोड़ी सी बात चीत करके रोगी को प्रसन्न कर आएँ ।

मन में यह कहकर उठ खड़े हुए और रास्ते में चलते-चलते बातचीत करने का प्रोग्राम तैयार किया जो इस प्रकार था ।

पहली बात हम पूछेंगे—"अब आपकी प्रकृति की क्या दशा है ?" इसका उत्तर नियमानुसार यह होगा कि "अब तो कुछ आराम है, आपकी कृपा से ।"

हमारी ओर से दूसरा प्रश्न यह होगा :- "कौन सी औषधि का सेवन है ?" इसके उत्तर में वह किसी न किसी औषधि का नाम अवश्य लेंगे । फिर तीसरा प्रश्न यह किया जायगा कि "आप कौन से डाक्टर की चिकित्सा करते हैं ?" इसके उत्तर में भी रोगी किसी न किसी डाक्टर का नाम अवश्य हीं लेगा । हम उसे प्रसन्न करने के लिये रोगी की प्रत्येक बात पर "बहुत ठीक, बहुत ठीक" कहकर चले आएँगे । ऐसे चकमे देंगे कि कोई जान ही न सके कि हम बहरे हैं ।

इधर प्रोग्राम तैयार हुआ, उधर रोगी के घर पर भी आ

उपस्थित हुए। रोगी की दशा अत्यंत भयानक थी, किंतु यह अपने प्रोग्राम के अनुसार काम करने लगे।

बधिर—(रोगी से) अस्सलाम अलैकुम किबला ! (नमस्कार भगवन् !) कहिए, क्या हाल है ? अब तो कुछ आराम है न ? ज्योंही यह खबर सुनी कि जनाब की तबीयत अच्छी नहीं है, चित्त व्याकुल होगया। खुदा आपको शीघ्र आरोग्यता प्रदान करे।

रोगी—हाय मरता हूँ। प्राण निकलने ही को हैं। हाय हाय !

बहिर—(रोगी के ओष्ठ हिलते देखकर) अल्हम्द लिल्लाह ! आपका स्वास्थ्य लाभ होना सुनकर जान में जान आ गई। धन्यवाद है बारी ताला (परमात्मा) का, धन्यवाद है। आप औषधि कौन सी सेवन करते हैं ?

रोगी—(व्याकुल होकर) विष सेवन करता हूँ, विष !

बधिर—यह औषधि तो रामबाण है, अमृत है। आपके रोग के लिये तो 'आबेहयात' (अमृत) है। बहुत ठीक। श्रीमान् कौन से चिकित्सक की चिकित्सा करते हैं ?

रोगी—(अत्यंत खिन्न होकर) मलकुलमौत (यमराज)की

बधिर—उक्त डाक्टर साहब तो हकीम हाज़िक है। वह तो अफ़लातून और जालीनूस है। उसके हाथों में यश है। वह हुक्मी इलाज करता है। मैं अभी उसी के यहाँ से आ रहा हूँ।

इधर रोगी तो बहरे के उत्तरों से जलभुन कर कोयला हो रहा था; उधर बधिर अपनी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता पर अभिमान कर रहा था, क्या खूब ?

तुम्हारा अंतरात्मा इस विचार को नहीं सह सकता (rebels against it) कि "तुम अशुद्ध हो।" प्रत्येक व्यक्ति को छोटा बनने से स्वाभाविक घृणा वा संकोच (natural repugnance) है। इस शिक्षा का उपदेश तो यह है कि "शुद्धम् अपापविद्धम् =तुम शुद्ध और पाप से मुक्त हो। तुम शरीर और शारीरिक कदापि नहीं हो। शरीर (मल और विष्टा का थैला) तो किसी का भी शुद्ध नहीं हो सकता, चाहे कोई हज़ारों वर्ष उसे गंगा में धोया करे।"

कभी न होवे शुद्ध कुबुध यह जल में धोए।
प्याज़ न केसर होय जाय कशमीरें बोए॥

तुम्हारे भीतर से आवेश (impulse) के साथ एक शुभ संवाद (gospel) सुनाई देती है कि "शुद्ध स्वरूप जो है सो ही तुम हो, शरीर नहीं हो: अशुद्ध और परिच्छिन्न शरीर तथा बुद्धि के ख्याल को त्यागो, और अपने शुद्ध स्वरूप में जागो। मगर वाह रे उल्टी समझवाले बहरों के बहरे! तुम पर इस अंतरावेश का यह प्रभाव होता है कि तुम अपने साढ़े तीन हाथ के एंडमन टापू को शुद्ध और निर्दोष दिखाया चाहते हो, शरीर और बुद्धि को निरपराधी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हो, देहाभिमानी रहकर दोषों से भागते हो। तुम्हारे अंतरात्मा से निरन्तर यह लेक्चर निकलता है कि मंसूर की तरह सिर से परे होकर लोक परलोक के स्वामी हो जाओ। अपने आत्माभिमान (महत्व) को सँभाल लो। किंतु विचित्र बधिर हो कि फ़रऊन और नमरूद के समान धन-धरती से परिच्छिन होकर बड़ा बनना चाहते हो। घमंड में फँसते हो।

नमरूद शुद मरदूद चूँ? बूदश निगाह महदूद चूँ।

मारा तकब्बूर कै सज़द ? चूँ किब्रिया हरजास्तम ॥

अर्थ—नमरूद क्यों लज्जित वा क्षुद्र हुआ ? इसलिये कि उसकी दृष्टि परिच्छिन्न थी। भला मुझे ऐसा क्षुद्र अहंकार कब शोभा देता है, जबकि मैं ब्रह्म भाँति सब जगह समाया हुआ हूँ ? (अथवा भला मुझे अहंकार क्यों हो जबकि मैं ही हर जगह सब से बड़ा हूँ ?) ।

तुम्हारे व्यवहार पर प्रकाशस्वरूप से यह नाद आ रहा है कि चमड़े की जूतियाँ (शरीर-भाव) उतार डालो। क्योंकि जहाँ तुम खड़े हो, अत्यंत पवित्र भूमि है। पर आश्चर्य ! ओ बधिर (बहरे) मूसा ! तुम यह जूतियाँ (शरीर) पवित्रात्मा पर रक्खा चाहते हो।

(३) चाटुकारिता (खुशामद) चींटी से लेकर ईश्वर तक को भाती है।

खुशामद हर किरा करदी खुश आमद।
जिस व्यक्ति की खुशामद की, उसे अच्छी मालूम दी।

आख़िर क्यों ? कारण क्या है ? केवल यही कि खुशामद हमें प्राणप्रिय-सुमन की सुगंध पहुँचाती है। हमारे घर (निजधाम) से संदेशा लाती है। मैं आत्मदेव, बहुत बड़ा हूँ, यह पता बताती है। और यह आनंद-संवाद सुनाती है कि।

तूर पर चश्मे-कलीम अल्ला का तारा है तू।
मानिए-यासीन है तू मफहूमे-"ओ अदना" है तू॥

शोक ! पत्र (संदेशा) को लेकर तुम अविद्या रूपी मद्य में डिबो देते हो कि।

ईं दफ़्तरे बेमानी ग़र्क़े-मए नाब औला।

या उसके ऊपर के सुंदर लिफ़ाफ़े पर कुछ देर मस्त होते हो, फिर विना पढ़े उसे शरीर रूपी रद्दी के टोकरे (waste paper basket) में डाल देते हो (अर्थात् वह बड़ाई शरीर को दे देते हो)।

यदि इस खुशामद के लिफ़ाफ़े को फाड़कर संदेशे के लेख को देखा होता जिसमें स्वयं परमात्मा स्वरूप आनंदघन तुम्हें लिखता है किः—

"हाय दरादिया ! दरद बड़ा मेरा,
करां मिन्नतां ते भरां मुट्ठियाँ मैं।
काहनूँ नाल जुदाई जलावना हैं,
खुत्ती कदों तेरे नालों उट्ठियाँ मैं ॥"

तो बाछें खिल जातीं, आनंद की अधिकता के कारण लिफ़ाफ़ा हाथ से गिर जाता (अर्थात् खुशामद का स्वभाव छूट जाता)। खुशामद की चिट्ठी में प्रियतम का चित्र है—

आ जाय अगर हाथ तो क्या चैन से रहिए।
सीने से लगाए तेरी तस्वीर हमेशा ॥

प्रियतम का चित्र ही नहीं, वरन् स्वयं प्रियतम मानो कह रहा है—

नज़दीके-मनी मरा मबीं दूर। पहलूए-मनी मबाश महजूर ॥

अर्थ - तू मेरे निकट है, मुझको दूर मत देख। तू मेरे पार्श्व में है, मुझसे अलग मत हो।

(४) विद्यार्थियो ! सरकारी नौकरो ! शपथ (सौगंद) से कहना, कैसा प्रिय है तुमको यह मीठा नाम "छुट्टी" ! हाय स्वतंत्रता ! सारा संसार तड़पता है स्वतंत्रता के लिये—

O Liberty!
Thou huntress swifter than the moon! thou terror
Of the world's wolves! thou bearer of the quiver,
Whose sunlike shafts pierce tempest-winged error,
As light may pierce the clouds when they dissever—
In the calm regions of the orient day!

....

The voices of thy bards and sages thunder
With an earth-awakening blast
Through the caverns of the past;
Religion veils her eyes; oppression shrinks aghast,
A winged sound of Joy, and love, and wonder,
Which soars where expectation never flew,
Rending the veil of space and time asunder

(Shelly)

अर्थ-ओ स्वतंत्रते ! तू चंद्रमा की अपेक्षा भी अधिक तीव्र, (लोगों का) शिकार करनेवाली है (अर्थात् सर्व-साधारण का मन तेरे फंदे में फँस जाता है), और संसार के भेड़िये (अर्थात् दूसरों को अपने अधिकार में रखनेवाले) तुझ से बहुत डरते हैं (क्योंकि यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होगया तो

दूसरों के जीवन पर आयु व्यतीत करनेवालों को दिन काटने कठिन हो जायँगे); तू इस प्रकार का तरकश अपने पास रखती है कि जिसके सूर्य के समान तीर आँधी चला देने-वाली भूल (अज्ञान) को ऐसे छेद देते हैं, जैसे प्रकाश बादलों को छेद देता है, जब कि उजेले (या पौर्वात्य देशों के भीतर) दिन के शांत आकाश मंडल में वह (बादल) बिखरे होते हैं ....

तेरे गायक(कवियों) और ऋषियों की आवाज़ भूतकाल की तह से भूमंडल को जगा देनेवाले (वायु के) झक्कड़ की तरह गरजती हैं। धर्म (मत मतान्तर) उसकी आँखों पर पर्दा डालता है; अत्याचार डरकर भागता है; जहाँ कभी आशा दूर नहीं हुई, वहाँ हर्ष, प्रीति, और आश्चर्य की आवाज़ पक्ष (पर) लगाकर ऐसी ऊपर उठती है, मानों देश काल के आवरण को छिन्न भिन्न कर देती है। (शैले)

स्वतंत्रता तुम्हारी यथाक्रम अवस्था (Normal state) है। तुम पहले ही नित्य मुक्त हो। छुट्टी, त्योहार, उत्सव, मेले आदि क्यों न अच्छे प्रतीत हों? वह लुप्त यूसुफ़ का वस्त्र सुँघाते हैं, परिच्छिन्नता की पीड़ा में फँसे हुए, अज्ञान के बिछौने पर करवट लेने वालों को ज़रा मीठी नींद सुलाते हैं, और दासता के दुख से ज़रा छुटकारा दिलाते हैं; पर अज्ञान की शय्या तो काँटों की शय्या है, जब तक उस पर लेटते हो, काँटे चुभेंगे, स्वतंत्रता का सुख नहीं मिलने का। आमोद-प्रमोद और छुट्टी एवं शादी आदि की निद्रा-जननी अफ़ीम (Narcotic) खाकर थोड़ी देर शूलों की नोकों को भुला देने की नीति ठीक नहीं।

मल्के बूदम व फ़रदोसे-बरीं जायेम बूद।
आदम आवर्द दरीं दैरे-ख़राब आबादम्॥

अर्थ—मैं एक फ़रिश्ता (देवदूत) था. और सुंदर स्वर्ग मेरे रहने का स्थान था; लेकिन हज़रत आदम मुझको इस खराब आबाद मन्दिर (जगत्) में ले आया।

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते-इंसान पर।
फ़ेले-बद तो खुद करे लानत करे शैतान पर॥

Fill the bright goblet, spread the festive board,
Summon the gay, the noble and the fair;
Through the loud hall in joyous concert pour'd
Let mirth and music sound the dirge of care,
But ask thou not if heppiness be there,—
If the loud laugh disguise convulsive throe,
Or if the brow the hearts true livery wear;
Lift not the festal mask;—enough to know,
No scene of mortal life but teems with mortal woe.

अर्थ ऐ शौंडिक (सुरा पिलानेवाले)! इस चमकीले प्याले को भर दे और आह्लाद का आसन बिछादे; प्रसन्न वदनों, सज्जनों और सुरूपवालों को बुलादे; हर्षित करनेवाली और सुरीली रागध्वनि द्वारा दालान के गूँज जाने से (अर्थात् राग-रंग से) इस प्रफुल्लता और हर्ष पूर्ण ध्वनि को चिंता का करुणगीत (रुदन) दबाने दे (अर्थात् इस राग और रंग के प्रभाव से यदि चिंता और शोक दबने लगे तो दबने दें), किंतु

यह कदापि मत पूछ कि वहाँ (उस राग रंग आदि में) आनंद वास्तव में है भी या नहीं। यद्यपि वह ज़ोर के अट्टाट्टहास (क़हक़हे) ऊपर से कुछ और ही दिखलाते हैं (और वास्तव में शोक और पीड़ा के देनेवाले हैं), या यद्यपि यह ललाट (सुरा पान के समय जो त्योरी चढ़ी ललाट होती है, वह) हृदय की सच्ची चपड़ास पहने हुए है (अर्थात् हृदय की पूर्ण दासता कर रही है, या हृदय की दशा का चित्र खींचकर दिखला रही है); तथापि तू ऐसी आमोद-प्रमोद की गोष्ठी का पर्दा मत खोल। इतना जानना काफी है कि मानवी जीवन का कोई दृश्य ऐसा नहीं जो असाध्य दुःख और शोक से परिपूर्ण न हो।

शूलों और काँटों से पीछा छुड़ाना हो तो अज्ञान-शय्या (अविद्या) को त्याग दो, स्वतंत्रता और आनंद को अपना ही स्वरूप पाओगे, और आनंद तक गति लाभ करने के लिये opiates (निद्राजननी वस्तु, कंचन, कामिनी आदि) की सहायता के दीन न रहोगे।

पंजा दर पंजए-खुदा दारम।
मन चिः परवाय-मुस्तफ़ा दारम?

अर्थ—मैं अपना हाथ खुदा के साथ मिलाए हुए हूँ। मुझे रसूल (मुस्तफ़ा) की क्या परवाह है?

नित फ़रहत है, नित राहत है,
खुश साक़ी है आज़ादी है।
खुश खंदा है, रंगीं गुल का,
खुश शादी शाद मुरादी है॥
जब उमड़ा दरिया उल्फ़त का,

हर चार तरफ़ आबादी है।
हर रात नई इक शादी है,
हर रोज़ मुबारकबादी है॥

मेरी जान! "दाम के नीचे फड़कने का तमाशा" बहुत देख लिया, अब आज़ादी (जीवनमुक्ति) के "लाखों मज़े" चक्खो और अपनी जिह्वा से यह गीत गाना छोड़ दो कि:—

यों तो ऐ सय्याद! आज़ादी में हैं लाखों मज़े।
पर दाम के नीचे फड़कने का तमाशा और है॥

बहुत ज़ख्मी हुए, अब छोड़ दो यह दिल्लगी। छोड़ो, छोड़ो। रेशम के कीड़े की तरह आप ही कोया (कोष, Cocoon) बनाकर उसमें मत फँसो। अविद्या को दाया (परिचारिका या पालका) बनाकर उसकी गोद में मत बैठो। यह पूतना राक्षसी है। इसके विषवाले दूध को क्यों तरसते हो? तुम्हारी सुखशय्या तो क्षीर-समुद्र (the ocean of knowledge) है, जहाँ विष और काँटोंवाला शेषनाग भी नरम-नरम बिस्तर का काम देता है और चँवर झुलाता है, जहाँ संसार भर को मोह लेनेवाली लक्ष्मी तुम्हारे चरण दबाती है।

(५) व्याख्यानदाता और उपदेशक लोगों के अनुशासनों और उपदेशों भरे व्याख्यानों को नित सुनते रहने पर भी (instinctively) शुद्ध मन वा चित्त से कोई भी मनुष्य "अपने जैसे" को देखने की सहनशीलता नहीं रखता। प्रत्येक व्यक्ति ग़य्यूर (ईर्ष्या करने वाला) है, रक़ीब (प्रतिद्वंद्वी) और "साथी" का नाम नहीं सह सकता। रेल पर सवार होते समय देख लो, जो व्यक्ति जिस कमरे में बैठ गया, मन से यही चाहेगा कि "और कोई न आए, मैं ही मैं रहूँ," और की

गुंजायश नहीं है। ईश्वर (personal god) भी यदि किसी विषय में रकीब (प्रति द्वंद्वी) हो तो सहन नहीं हो सकता। विचार करो—

व वक़्ते-अलविदा उस महलक़ा को।
न सौंपा बदगुमानी से खुदा को॥

वह दिन खुदा करे कि खुदा भी यहाँ न हो।
मैं हूँ, सनम हो, और कोई दरमियाँ न हो॥

छोड़ा न रश्क ने कि तेरे घर का नाम लूँ।
हर इक से पूछता हूँ कि जाऊँ किधर को मैं॥

ऐ मूसा (मनुष्य)! तेरे तेजस्वरूप से उदात्त स्वर से यह आवाज़ आ रही है कि हाँ! हाथ बढ़ा और शिवोऽहं रूपी सर्प (मारे-अनलहक) को पकड़ ले। डर मत! यह डरावना साँप (शेष) विषैला नहीं है, अमृतवाला है; तेरे छूते ही काट खाने के स्थान पर सीधी (तत्त्व की) लाठी "I" हो जायगा। यह वह लाठी है जिसे शुष्क पत्थरों पर मार तेरे लिये मधुर जल झिरेगा; आकाश की ओर उठा! मन्ना (Manna देवदूतों का भोजन) बरसेगा; संसार-सागर से छुआ! फट जायगा तेरे पार होने के लिये।

आ! अपने असल (वास्तविक स्वरूप) की ओर आ। तेरा अज्ञान ही शैतान है। इस अज्ञान के कारण तू शरीर को अपना गौरव देना चाहता है। तवे से सूर्य का काम लेने की करता है. (अर्थात् 'शरीर' को अद्वितीय और अप्रति-द्वंद्वी करने पर तुला है)।

ता चंद तो पस रवी व पेश आ।
दर कुफ्र मरो व सूए केश आ॥

दर नेशे-तो नोशवीं व पेश आ।
आख़िर तो व अस्ल ! अस्ले-खेश आ ॥ १ ॥

उमरेस्त कासीरे—गुर्वती तो।
पा वस्तए—दामे-मेहनती तो॥
चूँ-गौहरे-कान दौलती तो।
आख़िर तो व अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ ॥ २ ॥

विशकन हला बंदे-कालबुद रा।
आज़ाद कुन अज़ ज़माना खुद रा॥
रौ तर्क बगोय नेको-बद रा।
आख़िर तो व अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ ॥ ३ ॥

हर चंद, तिलस्मे-ईं जहानी।
दर बातिने-ख्वेशतन तो कानी॥
विकुशाय दो दीदाए-निहानी।
आख़िर तो व अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ ॥ ४ ॥

लाली बमियाने-संग ख़ारा।
ता चंद ग़लत दिही तो मारा॥
दर चश्मे-तो ज़ाहिरस्त यारा।
आख़िर तो व अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ ॥ ५ ॥

हक्क़ा कि ज़ परतवे-हक़्क़ी तो।
वज़ जौहरे-फ़क़्रे मुतलक़ी तो॥
वज़ वादए-रूह रावक़ी तो।
आख़िर तो व अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ ॥ ६ ॥

दुनिया जूएस्त जूद विगुज़र।
ज़ आँसूए जहाने-ताज़ा बिनगर॥

हाँ ! अहदे-क़दीम याद-आवर।
आख़िर तो ब अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ॥ ७॥

हरचंद ब सूरत अज़ ज़िमीनी।
बसरिश्तए-गौहरे-यक़ीनी॥

बर मख़ज़ने-नूरे-हक़ अमीनी।
आख़िर तो ब अस्ल ! अस्ले-ख्वेश आ॥ ८॥

चूँ ज़ादए-परतवे-जलाली।
वज़ तालए साद नेक फ़ाली॥

अज़ बहरे-अदम तो चंदनाली ?
आख़िर तो ब अस्ल ! अस्ले ख्वेश आ॥ ९॥

ख़ुद रा चो बेख़ुदी ब बस्ती।
मी दाँ कि तो अज़ ख़ुदी बरस्ती॥

वज़ बंदे-हज़ार दाम जस्ती।
आख़िर तो ब अस्ल ! अस्ले ख्वेश आ॥ १०॥

अर्थ-(१) तू पीछे कब तक जायगा,आगे बढ़ (अर्थात् अवनति को तू कब तक करेगा, उन्नति कर)। नास्तिकता (कुफ्र) की ओर मत जा, अपने स्वरूप की ओर आ (अर्थात् नास्तिक मत बन, केवल अपने स्वरूप को पहचान)। डंक में तू शहद देख और आगे बढ़। प्रयोजन यह कि ऐ शुद्ध स्वरूप ! तू अपने स्वरूप की ओर आ, और इस ज्ञान के कठिन मार्ग पर चलते समय तुझे जब कठिन कष्ट और दुःख सामने आवें, तो उन में तू सुख समझ, क्योंकि इस मार्ग में यह दुःख और कष्ट नित्यानंद दिलाने वाले होते हैं, और इन चोटों और दुःखों से किसी प्रकार साहस हीन मत हो, वरन् आगे

बढ़ता चल, और जब तक तू अपने सत्य स्वरूप को भली भांति न जान ले, कदापि मत ठहर।

(२) एक आयु बीत गई, तू नानत्व (ग़ैरियत) का दास बना रहा और कष्टों के जाल में फँसा रहा। जब तू कुबेर भण्डार का मोती है (अर्थात् अक्षय कोष या रत्न है), तो फिर अंततः तू अपने स्वरूप की ओर आ (अर्थात् अपनी यथार्थ सत्यता का अनुभव कर)।

(३) होशियार हो, शरीर के बन्धन को तोड़ और अपने आप को देशकाल से स्वतंत्र कर। जा, बुराई और भलाई दोनों को छोड़ दे, और अन्त को अपने स्वरूप की ओर, ऐ सत्यस्वरूप ! तू आ।

(४) यद्यपि तू इस जगत् में एक अद्भुत पदार्थ है और अपने भीतर में तू जगत् की खानि है, तो भी तू दोनों भीतरी आँख खोल और ऐ सत्यस्वरूप ! तू अपने स्वरूप की ओर आ।

(५) नीले पत्थर (खनिज) में तू लाल है, मगर हम को कब तक तू धोका देता रहेगा ? तेरे दिव्य नेत्र में तो बल (शक्ति) प्रत्यक्ष है,इस लिये ऐ सत्यस्वरूप ! तू अपने वास्तविक स्वरूप की ओर मुँह मोड़।

(६) ईश्वर की सौगंध कि तू परमार्थ की प्रभा है और पूर्ण त्याग का एक जौहर (रत्न) है, और अक्षय आनन्द की निष्कृष्ट मद्य तू है, फिर ऐ सत्य स्वरूप ! तू अपने शुद्ध स्वरूप की ओर आ।

(७) संसार एक नदी है, इसे जल्द पार कर, और उस पार से नूतन जगत् को देख, अर्थात् मृत्युलोक को छोड़ और

सत्यलोक की ओर मुखकर। खबरदार (सुबोध) हो और अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कर (वह प्रतिज्ञा जो सृष्टि के आदि काल में तुझसे हुई थी, या जो प्रतिज्ञा तू ने माता के उदर में ईश्वर के साथ की थी, उसको स्मरण कर), और अंत को ऐ सत्स्वरूप ! तू अपने वास्तविक स्वरूप की ओर आ।

(८) यद्यपि देखने में तू मिट्टी का पुतला (भू मंडल वासी) है,किंतु वास्तव में (वास्तविक रूप से) तू निश्चय पूर्वक मोती है, और सच्चे प्रकाश के स्रोत पर तू अमीन (धरोहर रखने वाला) है, इस लिये, ऐ सत्स्वरूप ! तू अंततः अपने वास्तविक स्वरूप की ओर आ।

(९) जब तू दिव्य तेज से उत्पन्न है,और शुभ नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण शुभ शकुन वाला है, तो नाश (अदम) के लिये तू फिर कब तक रोता रहेगा। ऐ सत्स्वरूप ! अंततः तू अपनी वास्तविक सत्ता को पहचान।

(१०) जब अपने आपको तू ने निरहंकारता से बाँध लिया, तब तू समझ ले अहं मम-भाव तुझसे छूट गया और सहस्रों पाशों के बंधनों से तू कूद गया, इस लिये ऐ सत्स्वरूप ! तू अपने वास्तविक स्वरूप की ओर आ (अर्थात् आत्मानुभव कर)।

—o—

(६) एक भोला विद्यार्थी स्कूल जाने से जी चुराता था। एक दिन उसके जी में आया कि चाहे कुछ ही हो, आज स्कूल नहीं जायँगे, घुटने पर पट्टी बांध ली और बहाना किया कि बड़ी भारी चोट आई है, चला नहीं जाता। हेड-मास्टर के नाम अर्ज़ी लिखी कि "श्रीमन् ! आज मुझ अनुचर को क्षमा कीजिएगा, चोट लग जाने के कारण चल नहीं सकता, स्कूल किस प्रकार आऊँ ?" अस्तु। अर्ज़ी तो लिखी गई,

अब उसे मास्टर साहब तक पहुँचावे कौन ? स्वयं ही स्कूल जाकर विद्यार्थी ने अर्ज़ी मास्टर साहब के हाथ में दी और कहा—"आज स्कूल तक पहुँचना दुस्तर है।" यह सुनकर सब विद्यार्थी और मास्टर साहब खिलखिला कर हँस पड़े कि ऐ भोले ! तेरा यह अर्ज़ी यहां तक लाना ही तेरी बात का खंडन करता है। तुम स्कूल तक तो पहले ही पहुँचे हुए हो, "आना कठिन है" के क्या अर्थ ?

प्यारे ! चेतनघन तेरा स्वरूप है। यदि वाणी से तू स्वीकार भी करले, तो भी तू ज्ञान स्वरूप है। यदि वाणी से न, माने तो न मानने का कार्य ही तेरा ज्ञानस्वरूप होना सिद्ध करता है। यह कहना कि "राम ने जो कुछ लिखा है, मिथ्या है, मेरी समझ ठीक है"। (हर कसे रा अक़्ले-खुद बकमाल नुमायद= अर्थात्-प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुद्धि पूर्ण प्रतीत होती है) स्पष्ट सिद्ध कर देगा कि तेरे स्वरूप में ज्ञान की न्यूनता का ख़याल कदापि नहीं ठहर सकता। चेतनघन तू है—

> बहर रंगे कि ख़्वाही जामा मी पोश।
> मन आँ क़दे-मौज़ूँ मी शिनासम ॥

अर्थ—जिस रंग का तू चाहे वस्त्र पहन, किंतु मैं तो तेरा वही असली स्वरूप पहचानता हूँ।

अपनी जिह्वा से तो सब समय यही पुकारते हो कि "मैं अमर हूँ, शुद्ध हूँ, नित्य मुक्त हूँ", और वाणी से अपने आपको "दास, सेवक, बंदा" बनाते हो, शरीर की भावना में गिराते हो। यह जुलाहगिरी का धंधा कि "नीम तन दर गोर दारम, नीम तन दर ज़िंदगी=आधा शरीर समाधि में और आधा

जीवन में " छोड़ो—" बखुदा ! कि खुदायेद "=खुदा की क़सम कि तुम खुदा हो।

संसार भर के विज्ञान, तत्त्वज्ञान, काव्य और गणित तेरे आत्मा से निकले हैं और निकलते रहेंगे—

I am owner of the sphere,
Of the seven stars and the solar year,
Of Caesar's hand, and Plato's brain
Of Lord Christ's heart and shakespear's strain

अर्थ—मैं भूमंडल, सातों नक्षत्रों का और द्यौलोक का स्वामी हूँ. ऐसेही क़ैसर का हाथ, अफ़लातून का मस्तिष्क, भगवान् ईसा का मन, शेक्सपीयर की तुकबंदी.इन सब का मैं ही स्वामी हूँ (अर्थात् सब नाम रूप मेरे ही आश्रय हैं)।

संसार में प्रथा है कि जब किसी गणितशास्त्री से कठिन गुत्थी (प्रहेलिका Conundrum) हल हो जाती है. या कवि से फड़कती हुई कविता लिखी जाती है, तो घमंड से कहा करते हैं कि यह (विषय) सिद्धान्त में (अमुक नामवाले, अमुक स्थानवासी) ने सिद्ध किया, ये पद्य मैं (उपनाम अमुक, शिष्य अमुक) ने लिखे, किंतु प्रश्न यह है कि कोई गणितशास्त्रज्ञ या कोई कवि यह बतला दे कि गुत्थी के हल होते समय या प्रबंध के बनते समय उसकी वृत्ति निरोध नहीं थी, उसका चित्त एकाग्र न था, और नाम रूपात्मक भावना तिरोहित न थी ? भोजन करना भूल जाना, घर की उलझनों से बेख़बर होना, सेना सामने से निकल गई है पता न होना, नगर में विप्लव मचा है उससे अनजान होना, नंगी तलवार हाथ में लिए घातक सामने खड़ा है उसे न देखना, ऐसी-

ऐसी कई कथाएँ उन तत्ववेत्ताओं के संबंध में प्रसिद्ध हैं जो नाना रचनाओं और शास्त्रों के धनी (कर्ता) माने गए हैं। थोड़ा विचार करने से ज्ञात होगा कि उच्च विचार और गंभीर चिंता किसी व्यक्ति में उस समय प्रकट होते हैं जब उसमें अहंकार और घमंड दूर हुए होते हैं।

"मैं ने यह विषय (सिद्धान्त) सिद्ध किया।"

किसने किया ? क्या अमुक महाशय, अमुक स्थानवासी ने किया ? कदापि नहीं। जब विषय सिद्ध हुआ, तब यद्यपि लोगों को आपका शरीर दृष्टिगोचर हो रहा था, किंतु आपके यहाँ तो ऐसी एकाग्रता थी कि शरीर और नाम का खयाल बिलकुल लुप्त था। अहंकार (little self) की अनुपस्थिति में ज्ञान का (प्रकाश प्रादुर्भाव) हुआ। अतः ओ अविद्या रूप देहाहंकार (अर्थात् अमुक मैं, अमुक पुत्र आदि) तुम सिद्धान्त के ज्ञात होने पर या प्रबंध के आगमन पर घमंड किस बात का करते हो ? "किस बिरते पर तत्ता पानी"? सिद्धान्त और प्रबंध तो ज्ञानस्वरूप अद्वैतसत्ता (राम) से निकलते हैं। यह अद्वैत सत्ता,जहाँ से समस्त संसार का ज्ञान सूर्य की किरणों की तरह अवतीर्ण होता है, तुम्हारा असली स्वरूप है। यही तुम हो, परिच्छिन्न बुद्धि और शरीर आदि नहीं हो। न्यूटन के मस्तिष्क में तुम्हारा ही प्रकाश था, भगवद्गीता तुम्हारी ही एक pencil of light (रश्मि-समुदाय) है, क़ुरान और इंजील तुम्हारे ही स्वरूप सागर की तरंगें हैं।

अणोरणीयानहमेव तद्वत् महानहं विश्वमहं विचित्रम्।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि॥
अपाणिपादोऽहमचिंत्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।
अहंविजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाऽहं॥

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ २५

न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेंद्रिय बुद्धिरस्ति।
न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न चांवरं च ॥
(कैवल्योपनिषद मं० २३, २४, २५, २६)

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥ (गी० ६ । १०)

अर्थ-मैं सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हूं और ऐसे ही बड़े से भी बड़ा हूँ। यह नाम रूप विचित्र विश्व मैं हूं। मैं सब से पुरातन पुरुष हूँ, और बलवान् प्रकाशस्वरूप (वा आनंदमय) और कल्याण स्वरूप ईश्वर हूं। मैं हाथ-पाँव से रहित हूँ, और मेरी शक्ति अचिंत्य है। मैं बिना आँख के देखता हूं और बिना कान के सुनता हूँ। मैं नानारूप (अर्थात् विविध नाम रूप) पदार्थों से भिन्न अपने आप को विशेषतः जानता हूँ, और अन्य मेरा जाननेवाला कोई नहीं है। मैं सदैव चेतनस्वरूप हूँ। सब वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ, और वेदांतशास्त्र का बनाने वाला और वेदों का जाननेवाला मैं ही हूँ। मुझको पुण्य और पाप कोई नहीं है, और न मेरा नाश, जन्म, देह, इंद्रिय और बुद्धि है, और न भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश ही मेरा है। (कैवल्योपनिषद)

मुझ साक्षी की सहायता से यह प्रकृति समस्त संसार को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यह संसार चल रहा है। अर्थात् संसार के समस्त काम मुझ जगत् के अध्यक्ष के सहारे हो रहे हैं। (श्री मद्भगवद्गीता)

जिज्ञासु—यदि सब एक ही हो तो लोगों में बुद्धि और शरीर का अंतर क्यों हो? कोई लार्ड कैल्विन है, कोई बिल-

कुल उजड्ड है, कोई मखमल के गद्दों पर भी नखरे से पैर रखता है, किसी को नागरिक लोक अपनी दुकान के सम्मुख भूमि पर भी नहीं बैठने देते, कोई संसार का भीमसेन है, और कोई जन्मरोगी होकर बिछौने से भी नहीं उठ सकता। विचित्र अनर्थ हो रहा है! कैसा अंधेर मचा है! अत्याचार है! अन्याय है!

ज्ञानी—प्यारे! अंधेर करते हो तुम जो यह अंतर देखते हो। ऐसी अव्यवस्थित छोटाई-बड़ाई सत्य स्वरूप परमात्मा से यदि कभी भी सचमुच पैदा हुई होती, तो अनर्थ था, उपद्रव था; किंतु सत्य तो यह है कि छोटाई-बड़ाई है ही नहीं। जो इधर रंक दृष्टिगोचर होता है, वही उधर राजा है; जिसे यहां रोगी देखते हो, वही वहाँ पहलवान (Sandowe) है; जो यहाँ मूढ़ समझा जाता है, वही उस जगह वेदव्यास है। इस कारण कि सब का वास्तविक स्वरूप एक ही है, इस लिये अनर्थ और अत्याचार कैसा?

हस्ती च्यूँटी तृण ले आदिंग। एक अखंडित बसैं अनादिंग॥

मैं ही जो यहां भूखा हूँ, वहाँ कशमीर के मेवे खा रहा हूँ। यहां मूढ़ हूँ, वहां याज्ञवल्क्य हूँ।

इति तत्त्वमसि प्रभृति श्रुतिभिः।
प्रतिपादितममात्मनि तत्त्वमसि॥
त्वमुपाधिविवर्जित सर्व समम्।
किमुरोदिषि मानसि सर्व समम्॥ १॥
न हि बंध विबंध समागमनम्।
नहि योग वियोग समागमनम्॥
नहि तर्क वितर्क समागमनम्।
किमुरोदिषि मानसि सर्व समम्॥ २॥

सुख-दुःख-विवर्जित सर्व समम् ।
इहि शोक-विशोक-विहीन परम् ॥
गुरु शिष्य विवर्जित तत्त्व परम् ।
किमुरोदिषि मानसि सर्व समम् ॥ ३ ॥

नहि मोक्षपदं नहि बंधपदम् ।
नहि पुण्यपदं नहि पापपदम् ॥
नहि पूर्ण पदं नहि रिक्त पदम् ।
किमुरोदिषि मानसि सर्व समम् ॥ ४ ॥

बहुधा श्रुत्यः प्रवदंति यतो ।
वियदादिरिदं मृगतोय समम् ॥
यदि चैकनिरंतर सर्व समम् ।
किमुरोदिषि मानसि सर्व समम् ॥ ५ ॥

(अवधूतगीता अध्याय ५)

अर्थ-(१) "तू वही ब्रह्म है," ऐसा श्रुति-वाक्यों से आत्मा को वर्णन किया गया है। अतः आत्मा की दृष्टि से तू वही शुद्ध स्वरूप है और उपाधि के दूर करने से तू सब में सम है। जब तू सर्वत्र सम रूप (सर्व व्यापक) है, तो ऐ प्यारे ! फिर तू किस लिये रोता है ?

(२) तुझ में बंध और मोक्ष का प्रवेश नहीं, योग और वियोग का प्रवेश नहीं, ऐसे ही तर्क-वितर्क का भी प्रवेश नहीं, तो फिर प्यारे ! तू किस लिये रोता है ?

(३) यह तत्त्व सर्वत्र सम है, सुख-दुःख से रहित है, शोक-विशोक से परे है, गुरु-शिष्य के विचार से भी वह परमतत्त्व दूर है, ऐसा होते हुए भी फिर तू क्यों रोता है ?

(४) उस सत्यस्वरूप में न बंध का पद है और न मोक्ष का,

न पुण्य है और न पाप है, न पूर्ण है और न रिक्त (खाली) है, ऐसी दशा को जानते हुए फिर तू क्यों रोता है ?

(५) अनेक श्रुतियों ने यह बात कही है कि आकाश आदि ये सब नाम रूप मृगतृष्णा के समान हैं। और जब वह सब स्थान पर एक और समान है, तो फिर भला तू किस लिये (और क्यों) रोता है ? (अवधूतगीता)

आदम न बूदो मन बुदम, हव्वा न बूदो मन बुदम ।
आलम न बूदो मन बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ १ ॥

बा नूह दर कश्ती बुदम, बा यूनस अंदर क़अरे-चाह ।
अंदर दमे-ईसा बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ २ ॥

आँदम फ़ारऊने-लई, दर आवे-दरिया ग़र्क़ शुद ।
दर हर्बे-मूसा मन बुदम, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ ३ ॥

आँजा कि अहमद बर गुज़श्त, अज़ चारो पंजो हफ़्तो हश्त ।
बर हमनशीनश मन बुदम, मन आशिक़े-देरीना अम ॥ ४ ॥

ऐ आफ़ताब ! ऐ आफ़ताब ! गरमी मकुन, गरमी मकुन ।
खुद यक ज़ुबाँ खामोश कुन, मन आशिक़े-देरीनाअम ॥ ५ ॥

शाहे-हक़ीक़त बूदा अम, दरियाये-हिकमत बूदाअम ।
मौला कि बाशद पेश-मन ? राम आशिक़े-देरीना अम ॥ ६ ॥

अर्थ-(१) ऐ मुसलमानो ! जिस समय हज़रत आदम नहीं थे, उस समय मैं था। जब हव्वा भी नहीं थीं, उस समय भी मैं विद्यमान था (अर्थात् संसार के अस्तित्व के पहले भी मैं था)। मैं तो सब से पुराना आशिक़ (प्रेमी) हूँ।

(२) किश्ती (नौका) में हज़रत नूह के साथ जो रक्षक बैठा हुआ था, वह मैं ही था। कुएं की तह में हज़रत यूनिस के साथ (उनकी रक्षा करनेवाला) मैं था, और हज़रत ईसा के

प्राणप्रद श्वास में भी मैं ही विद्यमान था। मैं तो सब से पुराना आशिक़ हूं। ॐ

(३) जिस समय हज़रत मूसा की लड़ाई में दुरात्मा फ़रऊन नदी में डूब गया, उस समय भी मैं था। मैं तो ऐ प्यारो ! सब से पहले का पुराना आशिक़ हूँ।

(४) जिस स्थान पर कि हज़रत अहमद चौथे, पाँचवें, सातवें और आठवें आकाश से गुज़रे, उस आठवें आकाश पर भी मैं ही मौजूद था। मैं तो ऐ लोगो ! सब से पुराना आशिक़ हूँ।

(५) ऐ सूर्य ! ऐ सूर्य ! बहुत तेजी (गरमी) मत कर, गरमी मत कर। चुपके हो जा। मैं तेरे से भी पहले का आशिक़ हूँ।

(६) सच्चाई का मैं बादशाह हूँ (अर्थात् सच्चा बादशाह मैं हूँ), और बुद्धिमत्ता का मैं नद हूं (अर्थात् अनंत ज्ञान मैं हूं), मौला मेरे आगे क्या सामर्थ्य रखता है। मैं तो सब से पहले का (पुराना) आशिक़ हूँ

जिज्ञासु—मैं तो परिच्छिन्न शक्तिवाला हूं; ईश्वर सर्वशक्तिमान है। मेरी गति तो धरती के छोटे खंड तक है; ईश्वर सर्वव्यापक है। मुझ बंदे (जीव) को उस सर्वेश्वर के साथ क्या निसबत (तुलना)?

चे निस्बत ख़ाक रा बा आलमे-पाक।

अर्थ—शुद्ध (पवित्र) लोक को भला धूलि (अर्थात् पृथिवी लोक) से क्या तुलना? अर्थात् शुद्ध स्वरूप की परिच्छिन्न जीव से क्या तुलना?

ज्ञानी—तू परिच्छिन्न शक्तिवाला भला क्योंकर है?

अनंतः कुछ तो करने की शक्ति तुझ में है? जो कुछ तू करता है, वही बता। उससे हम अनुमान कर लेंगे कि तेरी शक्ति परिच्छिन्न है या अपरिच्छिन्न।

जिज्ञासु—मैं सवेरे प्रातःकाल उठता हूं। आवश्यकताओं से निवृत्त होकर व्यायाम करता हूं। इसके बाद कुछ लिखता हूं, कुछ पढ़ता हूं। भोजन करके दफ़्तर जाता हूं। वहां से आकर दूध पीकर सैर को जाता हूं, या मित्रों से मिलता हूं। कोई समाचारपत्र आया हो, तो उसे देखता हूं। इस तरह दिन कट जाता है। रात को सो रहता हूं।

ज्ञानी—कुछ और भी तो अवश्य करते हो?

जिज्ञासु—यही साधारण कार्य करता हूं। कोई निज का काम हो, तो उसे भी भुगता लेता हूं। कुछ दिन से रिसाला अलिफ़ (।) की प्रतीक्षा कर रहा था। इसके अतिरिक्त अपने स्मरण में तो मैं और कुछ नहीं करता।

ज्ञानी—बदलते क्यों हो? इसके अतिरिक्त अगणित काम नित्य करते रहते हो। उनका नाम ही नहीं लेते, ऐसे भोले बन बैठे हैं कहीं के! "यारां नाल पंज" ठीक नहीं।

जिज्ञासु—"अगणित काम"! कदापि नहीं। आप ऐसे महात्मा होकर यह क्या कह रहे हैं?

ज्ञानी—सुनिएगा। यह शरीर तो आप ही का है न?

जिज्ञासु—हाँ, क्यों नहीं? और किसका है?

ज्ञानी-प्रातः इस शरीर से भोजन आप ही ने पाया था न? और श्वास आप ही ले रहे हो, देख भी आप ही रहे हो, संध्या को खेत में जाकर कल का खाया हुआ त्यागोगे भी आप, और सोते भी आप हो, सच है न?

जिज्ञासु—ठीक है। बिलकुल ठीक है।

ज्ञानी-आमाशय के द्वारा भोजन कौन पचाता है?

जिज्ञासु—मैं।

ज्ञानी-और भूल न जाओ कि अपने शरीर की नाड़ियों में खून भी तुम ही चलाते हो। मुख में थूक भी तुम ही बनाते हो। वृक्क (गुर्दा) में मूत्र उत्पन्न करनेवाले भी तुम हो। बालों को बढ़ानेवाले भी तुम हो। फेफड़े में श्वास तुम्हारा है। तुम्हारे लीवर (liver, यकृत) में बाइल (bile, पित्त) बाहर से कोई भूत आकर नहीं डाल जाता। जब तुम आँख से देखते हो, तो तत्क्षण कई स्नायुओं (nerves पट्ठों) का हिलना आवश्यक है, उनको भी तुम ही हिलाते हो। cerebrum (सेरीब्रम, मस्तिष्क) को गति अर्थात् बुद्धि को प्रकाश तुम ही देते हो। इसके अतिरिक्त स्वाभाविक क्रियाओं के तुम ही कारण हो। तुम क्योंकर कुछ कामों का नाम लेकर हठ कर बैठे थे कि "इनके सिवा मुझसे और कुछ भी नहीं होता"? स्वप्नावस्था की दशा में जब मन और बुद्धि आदिक (तुम्हारे शस्त्रास्त्र) व्यवहृत नहीं होते, तुम्हारा काम बंद नहीं होता। उस समय भी भोजन पचाये जाते हो, बालों, नखों को बढ़ाए जाते हो। तुम्हें नींद कहाँ? सदा जागते हो। "कहाँ ख़्वाबे-गफ़लत सदा जागता हूँ।"

जब तुम्हारा यह शरीर नन्हा सा था, उस समय बुद्धि और विवेक से यद्यपि काम नहीं लेते थे, किंतु तुम वही थे जो इस समय हो। स्वप्न में भी तुम वही होते हो जो जाग्रत् में हो। जिस प्रकार तुम एक शरीर में बुद्धि की कारस्तानियाँ, रक्त का संचालन, और वृद्धिकरण कराते हो, वैसे ही अन्य शरीरों में भी तुम ही सब कारीगरियाँ कर रहे हो। पत्ते पत्ते में तुम्हारा प्रकाश है। तुम किस प्रकार कहते थे कि तुम्हारी शक्ति परिच्छिन्न है ?

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्वैः प्राणाभूतानि संप्रतिष्ठंति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशति॥
(प्रश्नोपनिषद् प्र० ४ मं० ११)

अर्थ—तात्पर्य—"ऐ सौम्य ! जिसने इस ज्ञानस्वरूप, अक्षय स्वरूप को पहचाना कि जो समस्त इंद्रियों की, जीवन की और परमाणुओं की चट्टान है, वह सब कुछ जान गया, वह सब में धँस गया।" The onething needful (एक आवश्यक वस्तु) यही है—

इक्को अलिफ़ तेरे दरकार।
बहुता इल्म अज़ाज़ील पढ़िया,
झुग्गा झांझा उसदा सड़िया।
उस्मीं जा अरशां ते चढ़िया,
पूरां दे पूर लँघाए सो पार॥
इल्मों बस करीं ओ यार।
इक्को अलिफ़ तेरे दरकार॥

अब अपने जीव (परिच्छिन्न) कहलाने का कारण सुनोः—

एक राजा जी के पुत्र को (साधारण बालकों के अनुसार) एक छोटी सी चितरीली थाली के साथ प्रीति होगई। जब

उसके लिये खाने को कोई वस्तु लाई जाती,तो बड़े हठ और आग्रह के साथ कहता कि "मेरी थाली में लाओ, तब खाऊंगा" यदि किसी बड़े थाल में भोजन परोस कर लाते, तो पैरों से दूर ठुकरा देता, अड़ियलपन दिखाता और चिल्लाकर डराता। अब कोई पूछे "भैया, सोने चांदी के थाल, कटोरे आदि बहुतायत से यहां मौजूद हैं, क्या उनका स्वामी कोई और है?" मगर बच्चा किसकी सुनता है? अपना ही हठ पाले जाता है। ठीक इसी तरह से ऐ सच्चे राजकुमार (आत्म)! तुम अनंत सम्पत्ति वाले हो, मगर जो कुछ इस "छोटी सी चितरीली थाली" अर्थात् बुद्धि (intellect) में धरा हुआ तुम्हारे सामने उपस्थित हो, उसे स्वीकार करते हो, उसे अपना समझते हो, शेष सब संपत्ति (स्वत्व) को जवाब देते हो, लात मारते हो। यदि बताया जाय कि यह सब अगणित और अपरिमित जायदाद तुम्हारी ही है,अपने तई क़ैदी न बनाओ, तो उल्टा-बुरा मानते हो।

जो कुछ तुम्हारी बुद्धि और इंद्रियों द्वारा स्पष्ट* होता है, केवल उसे ही स्वीकार करना और शेष सब करतूतों से इनकार करना (अर्थात् केवल बुद्धि और इंद्रियों के साथ ही

---

*कर्म और चेष्टाएँ दो प्रकार की हुआ करती हैं—एक स्वाभाविक दूसरे संकल्पित। स्वाभाविक (अविज्ञात) तो वह हैं जिनके होते समय बुद्धि को खबर न हो, जैसे रक्त संचालन श्वास-प्रश्वास, अभिवृद्धि आदि। संकल्पित (विज्ञात) वह हैं जिनके होने के लिये बुद्धि का संबंध होना आवश्यक है, जैसे भोजन, पान, गमन, संभाषण, लेखन, पठन, आदि। जब किसी से पूछा जाता है कि तू ने आज क्या काम किया? तो जो कर्म संकल्प द्वारा हुए होते हैं, उनका नाम ले लेता है, बहुसंख्यक स्वाभाविक चेष्टाओं का नाम तक नहीं लेता, मानो वे उसके द्वारा होते ही नहीं हैं।

अपने को अभेद-identify-करना); यही तुमको जीव (परिच्छिन्न) बनाता है। ज़रा विचारो तो सही, तुम्हें इस आत्महत्या करने का क्या अधिकार है ? एक तंग मुखवाली कुप्पी में भुने हुए चने पड़े थे और यह कुप्पी भूमि में गड़ी थी। बंदर ने आकर चनों के लिये कुप्पी में हाथ डाला और मुठी भर ली। चनों की भरी हुई मुठी मोटी और भारी हो गई, और कुप्पी का मुँह तंग था, इस कारण हाथ बाहर न निकाल सका। बहुत कुछ यत्न किया, एक न चली, वहीं क़ैद हो गया। चिल्लाता था, हल्ला मचाता था, किंतु मुठी के चने नहीं छोड़ता था, हाथ नहीं खाली करता था जिससे स्वतंत्रता प्राप्त हो।

अब बताओ, ऐसे का क्या उपाय ? मेरे प्राणप्रिय ! तुम्हें कोई क़ैद करनेवाला नहीं, तुम्हारे लिये बंध कहाँ ? तुमने तो उस हनुमान् के नातेदार की तरह इंद्रिय और बुद्धि को इस वेग से (अहंकार रूपी) मुटी में लिया है कि बंदी हो गये हो, परिच्छिन्न हो गए हो, जीव कहलाते हो। क्या ही सच कहा है इमर्सन ने कि-Every man is god playing the fool=प्रत्येक मनुष्य वास्तव में तो ईश्वर है, किंतु मूर्खताएं करता है।

मरज़ी चेतन की जभी झख मारन की होय;
मृगतृष्णा के नीर में वह चलियो बिन तोय।

खोलो मुट्ठी। मन और बुद्धि रूप कुसंग को छोड़ो। केवल एक शरीर में, एक मस्तिष्क में, एक बुद्धि में अपने आपको बद्ध क्यों मानते हो ? तुम मुट्ठी तो खोलो, सबके "यार पक्के हो"। "छुरी मारने और तलवार मारने" पर भी तुम्हारी यारी समस्त सृष्टि से नहीं छुट सकती। मुट्ठी खोलो, ग्रंथि दूर करो, समस्त प्रकृति को अपनी दुलहिन बनालो।

दिया अपनी खुदी को जो हमने मिटा,
वह जो पर्दा सा बीच में था न रहा।
रहे पर्दे में अब न वह पर्दा निशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा॥

आँ कस कि खाके-मारा गिल कर्दो खाना साख़्त।
खुद दरमियां दरामदो-मा रा बहाना साख़्त॥

अर्थ—जिसने हमारी मिट्टी का कीचड़ बनाकर अपना घर बनाया, वह स्वयं तो बीच में पड़ा और हमारा बहाना बना दिया (तात्पर्य यह कि करने-कराने वाला सब वह है, किंतु हमको मुफ़्त में उसका भागी ठहराता है)।

भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥
(मुंडको० अ० २ खं २ मं० ८)

अर्थ—उस परम पुरुष के देख लेने पर मनकी समस्त गुत्थियां हल हो जाती हैं, और समस्त कर्म (फल देने वाले कर्म) नाश हो जाते हैं।

ज्ञानाग्नि में अपने मन-इंद्रियों की आहुति बनाकर डाल दो, उस आत्मदेव के लिये सोतों, जागतों (द्विपाद, चतुष्पाद) का केवल एक ही शासक है।

द्वैत-भाव का रुदन विलाप करनेवाली बुद्धि का बलिदान चढ़ाओ उस अद्वैत स्वरूप के आगे, जो समस्त इंद्रियों, जीवन और शक्ति की चट्टान (पराकाष्ठा) है।

परिच्छिन्न बनानेवाली बुद्धि को लय कर दो उस हिरण्य-गर्भ में, आकाश और धरती कांपते हुए जिसकी ओर देखते हैं और जिसमें उदित हुआ सूर्य प्रकाशमान है।

ज़रा भीतर की ओर मुँह मोड़कर देखो। तुम ही हो वह जिसका तेज हिमाचल पर्वत प्रकट करते हैं, जिसकी महिमा नील नभ (या सागर) जतलाता है।

यस्य मे हिमवंतो महित्वा यस्य समुद्रं रस्या सहाहु।

(ऋग्वेद मं० १०)

अर्थ—बर्फ़ से लदे हुए पर्वत् अर्थात् हिमाचल पर्वत जिसकी महत्ता को जतलाते हैं और जिसकी महिमा को समुद्र प्रकट करता है (वह महान् तू है)।

साईं लोक पुकार दे, कर कर लंबे हाथ।
तू परमातम देव है, तू तिरलोकीनाथ॥

गर्चे ख़ाकी दरीं जज़ीरा-ए-ख़ाक।
लेक साफ़ी तर अज़ ज़ुलाल तुई॥
बिगुज़र ज़ि ख़्वेश दर ख़ुद आ यकबार।
ता बदानी कि ज़िबल अजलाल तुई॥

अर्थ—यद्यपि तू इस मृण्मयी भूमि में मिट्टी का पुतला है, किंतु बूँद-बूँद से टपके हुए पानी से भी अधिक स्वच्छ तू ही है। अपने से (अहंकार से) आगे बढ़ और एक बेर अपने आप में आ (अर्थात् आत्मानुभव कर) जिससे तू जान ले कि महान (ईश्वर) तू ही है।

जिज्ञासु—बस भगवन्, बस; अब सुनाते किसको हो? सुननेवाले होश तो आप ने रहने नहीं दिए।

दिल गुफ़्त मरा इल्म लुदनी हवस अस्त।
तालीमे-कुन अगर तुरा दस्तर्स अस्त॥
गुफ़्तम कि अलिफ़, गुफ़्त, दिगर, गुफ़्तम हेच।
दर ख़ाना अगर कस अस्त, यक हर्फ़ बस अस्त॥

अर्थ—दिल ने कहा कि मुझको रिद्धि सिद्धि की विद्या की चाह है, यदि तुझको इसमें योग्यता प्राप्त हो तो मुझको शिक्षा दें। मैंने कहा कि "अलिफ़"। उसने पूछा कि और आगे भी कुछ? मैंने कहा कि कुछ नहीं। दिल के घर में अगर कोई स्थान रखने को है तो वहां एक अक्षर (।=आकार) काफी है।

प्रजापति के उपदेश को इंद्र बत्तीस-बत्तीस वर्ष तक विचारता रहता था, आपके इस " । " (अलिफ़) रूपी उपदेश को हम पूरे बत्तीस दिन तक एकांत में प्रतिदिन विचारेंगे, फिर और सुनने को उपस्थित हो जायँगे।

(जिज्ञासु प्रेम से चरण छूता है)

ज्ञानी—नारायण! यह क्या? यह क्या? अभी से उस सारे उपदेश को भूल गए। ईश्वर के लिये हमें शरीर रूप न समझो, और न अपने आपको इस शरीर में बद्ध मानो। अच्छे जिज्ञासु हो कि आते ही हमें परिच्छिन्न बनाने लगे। प्यारे! हम तो तेरे भीतर विद्यमान हैं, तेरे शरीर में प्रकाशमान हैं, तेरे घर में पाहुने (मेहमान) हैं, वहीं हमसे अति प्रेम के साथ आलिंगन ही नहीं वरन् एकता लाभ करो। ऐ मेरे प्राण! घर में मेहमान छोड़ कर बाजार में फिरते रहना उसका अपमान करना है।

तालिब! मकुन तौहीनि-मन दर खाना अत राम अस्त बीं।
रूताफ़्ती अज़ मन चरा? दर कल्बे-तो पैदास्तम॥

अर्थ—ऐ जिज्ञासु! मेरा अपमान मत कर। तेरे घर में राम रहता है, वहां देख। ऐ प्यारे! तू मेरे से मुख क्यों फेरता है, मैं तो तेरे दिल में हर समय विद्यमान हूँ।

अपने शरीर और नाम, बुद्धि और देखने मात्र के पर्दों को उठाकर देखो, उसी दम राम से मिलाप होगा।

यार असाडे ने अंगिया सुलाया।
असाँ खोल तनी गल ला लिया।
असाँ घुट जानी गल लाय लिया॥

आपे रसिया, आप रस, आपे रावन हार।
आपे ही गल चोलड़ा प्यारे, आपे सेज पधार॥

आपे माछी मछली प्यारे, आपे पानी जाल।
आपे जाल मनक्कड़ा प्यारे! आपे सब दा काल॥

चार कोट चौदह भुवन, सर्व व्यापक राम।
नानक ऊन न देखिए पूरन ताके काम॥

अलिफ़ ओही हैं ओही सुरूप सोहना,
सही सच विचार खाँ ओही हैं तूँ।
जिन्हूँ वेद अभेद पुकारदे नी,
होया चाम चमकड़ी चूहीं हैं तूँ।
तूं ही विष्णु विरंच सुरेश होया,
कहीं काक तोता कहीं कुही हैं तूँ।
हैं तू ही, हैं तू ही, गोपाल सिंहा,
कुल तूही हैं, तूही हैं, तूही हैं तूँ॥

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

राम

(यह स्वामी राम का तीसरा लेख है जो पूर्वोक्त उर्दू मासिक पत्र "रिसाला अलिफ" में सन् १९०० में प्रकाशित हुआ था, और जिस को लिखते २ स्वामी जी वनों में सहित परिवार पधार गये।)

धीराः प्रेत्यास्माँल्लोकादमृता भवंति। (साम० केनो० मं० २)

अर्थ-ज्ञानवान् पुरुष इस संसार से मुख मोड़कर अमृत-पद लाभ करते हैं।

प्रेम खुराही सो पिये जो सीस दाक्षिणा देत।
लोभी सीस न दे सके नाम प्रेम का लेत॥

ता शाना सिफ़त सर न नही दर तहे-अर्रा।
हरगिज़ व सरे-जुल्फे-निगारे नरसी ॥ १ ॥

ता सुर्मा सिफ़त सूदा न गरदी तहे-संग।
हरगिज़ व सफ़ा चश्मे-निगारे नरसी ॥ २ ॥

ता हम चो दुरें सुफ़्ता न गरदी बा तार।
हरगिज़ व बना गोशे-निगारे नरसी ॥ ३ ॥

ता गुल शुदा चवरीदा न गरदी अज़ शाख।
हरगिज़ व गुले-हुस्ने-निगारे नरसी ॥ ४ ॥

ता खाके तुरा कूज़ा न साज़ंद कुलालां।
हरगिज व लबे-लाले-निगारे नरसी ॥ ५ ॥

ता हम चो क़लम सर न नही दर तहे-कारद।
हरगिज़ व सर अंगुश्ते-निगारे नरसी ॥ ६ ॥

ता हम चो हिना सूदा न गरदी तहे-संग।
हरगिज़ व कफ़े-पाए-निगारे नरसी ॥ ७ ॥

अर्थ-(१) जब तक कंघी की तरह तू आरे के नीचे शिर न रक्खेगा, तब तक अपने प्यारे के केशपाश तक न पहुंच सकेगा।

(२) जब तक कि तू (अर्थात् तेरा व्यक्ति गत अहंकार) सुरमे की तरह (ज्ञान रूपी) पत्थर के नीचे घिस नहीं जायगा, तब तक तू अपने प्यारे की आँख तक भी नहीं पहुँच सकेगा।

(३) जब तक कि मोती की तरह तू तार से न छेदा जायगा, तब तक अपने प्यारे के कान तक भी नहीं पहुँच सकेगा।

(४) जब तक कि तू फूल होकर टह्नी से नहीं काटा जायगा, तब तक तू अपने प्यारे की सुंदरता रूपी सुमन तक नहीं पहुँच सकेगा।

(५) जब तक कि प्रेम-मद्यविक्रेता रूपी कुम्भार लोग तेरी मिट्टी को पानपात्र न बनालें, तब तक तू अपने प्यारे के लालवत् अधरों तक भी नहीं पहुँच सकेगा।

(६) जब तक लेखनी की भाँति तू चाकू के नीचे शिर नहीं रक्खेगा, तब तक तू अपने प्यारे की अँगुलियों के सिरों तक (अर्थात् पोरों तक) नहीं पहुँच सकेगा।

(७) जब तक कि मेंहदी की तरह तू पत्थर के नीचे न पीसा जायगा, तब तक तू अपने प्यारे के पावों के तलवे तक नहीं पहुँच सकेगा।

खाक दर चश्मे कि ओ न शिनाख्त हुस्ने-ख्वेश रा।
मुरदा आँ दिल को बला गरदां नशुद दरवेश रा॥

अर्थ-उस आँख में धूलि पड़े कि जिसने अपने सौंदर्य को नहीं पहचाना, और वह दिल मुर्दा है जो साधु (त्यागी) पर न्यौछावर होने वाला न हो।

इश्क करन तलवार दी धार कप्पन।
नहीं काम एह भुक्खियाँ नंगियां दा॥
एथे थाँ नहीं अडूवांगियाँ दा।
एह ता कम्म है सिराँ थीं लंघियाँ दा॥

अज़ खुदी बेज़ार गश्तन दोस्त रा जुस्तन ज़ जाँ।
तर्के-दरमाँ कर्दनो व दर्द-इश्क़श साख़्तन॥
ऐ पिसर इश्क़ अस्त जानत ख़ेशतन रा इश्क़ दाँ।
ईं चुनीं बाशद व मानी ख़्वेश रा व शिनाख़्तन॥

अर्थ—रे बेटा! तेरा प्राण तो स्वयं प्रेम है, इसलिये तू अपने आप को प्रेम स्वरूप समझ। अपने (वैयक्तिक) अहंकार से विरक्त होना, प्यारे को मन-प्राण से ढूँढना, (प्यारे के मिलने में जो दुःख मिलें उनकी) चिकित्सा का त्याग करना, और अपने प्यारे के प्रेम के साथ अनुकूलता करना, यह बातें हैं जिनसे अपना स्वरूप पहचाना जाता है (अथवा अपने आप को पहचानने के ये अर्थ हैं)।

Whosoever shall save his life shall lose it,
and whosoever shall lose his life shall save it,

अर्थ—जो कोई भी अपना जीवन (प्राण) बचाएगा, वह उसे खोएगा; और जो कोई उसे खोवेगा, वह उसको बचायगा। तात्पर्य यह कि अपने प्राण को भगवान् या सर्वसाधारण की सेवा में निछावर करने से अमर जीवन प्राप्त होता है; और यदि वह स्वार्थपरता से दूसरों की सेवा में अपने जीवन का उपयोग नहीं करता, वरन समस्त आयु पेट-पालू की भाँति केवल पेट के धंधों में व्यतीत करता है, वह वस्तुतः अपने आपको हर प्रकार से नाश करता है, न इस संसार में उसे सुख और मानवी जीवन प्राप्त होता है, और न परलोक में।

प्राण दे,प्राण-प्यारे से मिल। सर त्याग,सरदार बन। सूली पर चढ़,मंसूर (विजेता) बन। अपने दीप्यवान मुखसे आवरण उठा, चंद्र और सूर्य को छिपा।-

कुमरियाँ आशिक़ हैं तेरी सरो बंदा है तेरा।
बुलबुलें तुझ पर फ़िदा हैं, गुल तेरा दीवानाहै॥

खुदी (अहंकार) छोड़, खुदा (ईश्वर) हो।

आपत्ति—बूँद भी कभी नदी हो सकती हैं? अंश क्योंकर पूर्ण बन सकता है? हम ईश्वर कभी नहीं हो सकते।

उत्तर—प्रथम तो तुम अपने आपको और का और मान रहे हो। आत्महत्या कर रहे हो,और दूसरे ईश्वर को कुछ का कुछ जान रहे हो। उसे परिच्छिन्न बना रहे हो,कलंक लगा रहे हो। ऐसी दशा में सच्चाई आप पर कभी प्रकट नहीं हो सकती। अलबत्ता "मैं" (त्वम्) का लक्षार्थ जानो और ईश्वर (तत्) के स्वरूप को पहचानो, तो अभी आनंद का वह माधुर्य प्राप्त हो कि चूँ और चरा के ओष्ट मिल जायँ। "मैं अमुक डिगरी पाया हुआ, अमुक जाति, अमुक वृत्ति, अमुक स्थान,-निवासी, इत्यादि" तुम नहीं हो, इसका नाम वेदांतवालों ने 'अहंकार' रक्खा है। यह अहंकार तुम नहीं हो। यह 'अहंकार' आत्मा नहीं है, यह 'अहंकार' ईश्वर नहीं है। जब ज्ञानवान् से यह वाक्य सुनाई देता है "मैं ब्रह्म हूँ" (मन खुदायेम), तो न 'मैं' से उसका तात्पर्य अहंकार होता है, और न ब्रह्म से तात्पर्य गुणोंवाला परिमित ईश्वर (personal god) होता है। इस वाक्य के तत्त्वार्थ को न समझ कर साधारण मनुष्य इस प्रेमानंद को अपनी

नासमझी से आकस्मिक विपत्ति समझ बैठता है। अहंकार (व्यक्तित्व) तेरा स्वरूप नहीं है। इस अहंकार को वेदांत निकालना चाहता है। अहंकार का अभाव करवाता है।

किसी राजा के पास एक कवि कविता करके लाया, जिसका आरंभ इस प्रकार था—

"ऐ ताजे-दौलत वर सरत अज़ इब्तिदा ता इंतिहा।"

अर्थ—हे राजन्! लक्ष्मी का मुकुट तेरे शीश पर आदि से अंत तक (सदैव) सुशोभित रहे।

राजा साहब फ़ार्सी-भाषा से अनभिज्ञ थे, किंतु नियमानुसार अपनी अज्ञता प्रकट करना न चाहते थे। कविता निस्संदेह बड़ी उत्तम थी। राजा साहब ने गुणग्राहकता दिखाने के लिये उस कवि को पारितोषिक पुरस्कार द्वारा धन-संपन्न कर देने की आज्ञा प्रदान की। इसपर दरबार के कवि को बड़ी ईर्षा हुई। राजा साहब के सम्मुख उस नवागत कवि से कहा कि अपनी कविता के पदों की ज़रा तक़तीय कीजिए। नवागत कवि तक़तीय करने लगा—

"ऐ ताजे-दौ"...मुस्तफ़ालन," "लत वर सरत"... मुस्तफ़ालन"...आदि।

बेचारा कवि "लत वर सरत" कह ही रहा था कि दरबार के कवि ने उसकी ज़ुबान रोक ली कि अरे नीच! हमारे महाराज को "लत वर सरत" (अर्थात् "लात तेरे शिर पर") ऐसा अपमान का वाक्य बोल रहा है! बस चुप रह। राजा साहब भी क्रोध से भर गए, और ओंठ दांतों में काटकर बोले—"ऐं! यह बात है?" वह ग़रीब हक्का बक्का रह गया कि लेने के देने पड़ गए, इत्यादि।

ठीक इसी तरह ओ राज-राजेश्वर मनुष्य ! वेद भगवान् (कवि) तेरी प्रशंसा के गीत यह कहकर लाया है—"अयं आत्मा ब्रह्म"=यह आत्मा ब्रह्म है. "तत् त्वमसि"=वह तू है-आदि । तू अपने अहंकार से उस पवित्र वाक्य को मत बिगाड़ ।

"दामे-तज़वीर मकुन चूँ दिगरां कुरआँ रा" अर्थात् औरों की भाँति कुरान को छल कपट का फंदा (जाल) मत बना । इस कविता को रद्द करने से न वेदभगवान् का अपमान कर, और न अपने शिर पर लात खा ।

उपरोक्त दृष्टांत इस प्रकार भी सुनने में आया है कि नवागत कवि तक़तीय करते समय जब बोला "ऐ ताजे-दौ. मुस्तफ़ालन", तब दरबारी कवि बड़ी तीक्ष्णता से चिल्लाया—"आगे भी तो कहो । आगे ! आगे !!, नवागत कवि अपने शत्रु के दुष्ट संकल्प को समझ गया और तत्काल दरबारी कवि की ओर मुख करके ज़ोर से बोला—"लत बर सरत—मुस्तफ़ालन", जिसके अर्थ यह हैं कि "ऐ छिद्रान्वेषी ! तुझको फटकार है ।"

प्यारे ! तेरे मूढ़. स्तुति कर्ता अहंकार की वेदभगवान् निंदा करता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ गीता ३.२७

अर्थ - माया के गुण करत हैं, सभी करम यह जान ।
अहंकार आत्म विमूढ़, लेत आपन को मान ॥

ज़ हक़ बेखबर ग़ाफ़िल अज़ ख़्वेशतन ।
शिनासद कि हर कार आयद ज़ मन ॥
गिरफ़्तारे-जहलस्त ख़्वेश रसासत ।
बर अहवाले-ओ हैफ़ खुर्दन रवासत ॥

अर्थ – ईश्वर से अपरिचित और आत्मविस्मृत मनुष्य यह समझता है कि जो कुछ काम होता है, वह मेरे से होता है: वह मूढ़ता में फँसा हुआ है और उस का खब्त (पागलपन) उन्नति पर है. उसकी ऐसी दशा पर शोक करना चाहिए।

"One
By egoism demented, thinks oneself
The doer of those acts which are performed
Throughout by nature's qualities."

अर्थ—अहंकार और घमंड के प्रमाद से उन्मत्त पुरुष (अर्थात् अज्ञानी और स्वार्थी मनुष्य) जो काम कि उसके स्वभाव से अपने आप होते हैं वह (अज्ञान के कारण) उनका कर्ता अपने आप को मानता है।

अहंकार को अपने संग में मत रख, अहंकार का अभाव कर। अहंकार के कारण न स्वयं छोटा बन और न ईश्वर को परिच्छिन्न (finite) समझकर अपने से भिन्न बना। बड़ी भारी भूल संसार में यह फैली हुई है कि आत्मा (अपना आप-self) जो विचार और बुद्धि से परे है, उसको ज्ञात पदार्थों के समुदाय में लाया चाहते हैं, वह निर्गुण है, उसको गुणवाला किया चाहते हैं।

जैसे सूर्य से समस्त पशु पक्षी और मनुष्यादि प्रतिपालित होते हैं; आँख देखती है सूर्य की कृपा से, हाथ काम करते हैं सूर्य से चेतनता (Energy) लेकर, भूमि स्थिर है तो सूर्य के कारण, समस्त कामधंधे का क्रम सूर्य की सहायता से चलता है, लोगों के लिये अहार सूर्य की कृपा से उत्पन्न होता है, चंद्रमा की चंद्रिका वस्तुतः सूर्य ही का प्रकाश होती है,

तैल प्रकाश को सूर्य ही से प्राप्त करता है, और ईंधन ताप को सूर्य ही से पाकर आता है। संसार में भला बुरा जो होता है, सूर्य ही की करतूत होती है।

आदित्येनैव ज्योतिषाऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्यतीति।

अर्थ—"सूर्य के प्रकाश से मनुष्य बैठता है, चलता-फिरता है, काम काज करता है और घर लौट आता है।" किसी अच्छे या बुरे काम को करते समय प्रत्येक अंग और अवयव की गति का कारण सूर्य ही होता है, किंतु कभी न देखा या सुना कि किसी न्यायालय (कचहरी) में सूर्य को प्रति वादी स्थिर करके नालिश दायर हुई हो।

ऐ प्रकाश के स्रोत! तुमने यह क्या अंधेर मचा रक्खा है कि प्रत्येक बात के करने कराने वाले भी हो और अनुत्तर-दायी भी बनते हो! ओ सूर्य! आप ही तो अपराधी हो और आप ही सब काम धंधों के देखने वाले साक्षी बन बैठते हो! कहाँ तक चकमे दोगे। आज महान मनुष्य के न्यायालय में बयान दो—

ख़ाके-पस्ती से अगर दामन तिरा हमदम नहीं।
यह बड़ाई का निशाँ ऐ नय्यरे-आज़म नहीं॥
अपनी हस्ती से कभी तू अगर महरम नहीं।
हमदम यक ज़र्रए ख़ाके-दरे-आदम नहीं॥
तू सदा मिन्नत पिज़ीरे सुब्हो फ़रदा ही रहा।
नूरे मसजूदे-मलक ज़ेबे-तमाशा ही रहा॥

सूर्य के इज़हार—(शुभ प्रतिज्ञा के साथ) ऐ शासकों के शासक मनुष्य! सब कुछ मुझसे प्रकट होता भी है और मैं किसी कार्य का कर्त्ता भी नहीं होता। पर आप ज़रा अपने

गिरेबान में मुँह डाल कर तो देखिए, मेरे कुल और उद्भव-स्थिति का तो पता लगाइए। मैं तो केवल आपका द्योतक हूँ, आपकी छाया हूँ। जो कुछ आप वस्तुतः हो, मैं उसका प्रतिबिम्ब हूँ। मेरी क्या मजाल कि आपके आत्मा को और का और वर्णन कर सकूँ। उल्टा मुझे अपराधी ठहराते हो। क्या खूब—

जादू वह जो सर पर चढ़के बोले।

पाठक! अब ज़रा विचार करो और देखो कि आपका आत्मा बुद्धि या अहंकार नहीं है, और न वह कभी कहता है कि "मैंने अमुक काम किया, मैंने यह बनाया, वह बनाया, कैसे-कैसे आनंद उठाए, क्या क्या न कर दिखलाया, इत्यादि"। आत्मा ऐसा ओछा नहीं कि उस पर यह पद्य लागू हो सके—

इतना भी चाहिए हौसला फ़व्वारा सां न तंग।
चुल्लू ही भर जो पानी में गज़ भर उछल पड़े॥

आत्मा तो सूर्य के समान है। उससे भिन्न भी कुछ नहीं, और वह कर्त्ता भोक्ता भी नहीं। अस्तित्व के विशाल मंदिर में आत्मा से सत्ता पाकर पाँचों प्राणों (प्राण अपान व्यान उदान समान) से अपना-अपना काम होता है।

यः प्राणेन प्राणिति स त आत्मा सर्वान्तरः।
योऽपानेनापानीति स त आत्मा सर्वान्तरः। यो व्यानेन व्यानीति स त आत्मा सर्वान्तरः। यो उदानेनोदानिति स त आत्मा सर्वान्तरः। एष त आत्मा सर्वान्तरः।

(बृहदारण्यकोपनिषद ३—४—१)

अर्थ—वह जो प्राणवायु के द्वारा श्वास लेता है, तेरा

आत्मा है, सब में रहने वाला; वह जो अपान वायु के साथ नीचे को जाता है, तेरा आत्मा है, सब में रहने वाला; वह जो व्यान से प्रत्येक स्थान पर पहुंचता है, तेरा आत्मा है, सब में रहने वाला: वह जो उदान से ऊपर को चढ़ता है, तेरा आत्मा है, सब में रहने वाला; यह तेरा आत्मा सब में रहने वाला है।

आत्मा के प्रकाश में सब इंद्रिय रहते-सहते हैं। मस्तिष्क रूपी हारमोनियम (बाजा) से बुद्धि और अहंकार रूपी स्वर आत्मा के कारण से निकलते हैं, किंतु यह आत्मदेव इस खयाल से भिन्न और परे है कि "मैं करता हूँ"। आत्म कभी नहीं कहता कि "मैं ने खून बनाया, मैं ने हड्डियाँ और पट्ठे तैयार किए, मैं ने बाल बढ़ाए, आदि"। सब कुछ होता भी उसी से है और वह आप करने का नाम भी नहीं लेता। करने कराने की विवेचना (Consciousness) से परे है आत्मा। विवेचना और बुद्धि (Consciousness) तो उसका एक खेल है। जहाँ सैकड़ों काम उसकी सत्ता से अपने आप हो रहे हैं:- जैसे श्वास-प्रश्वास, रक्त-संचलन, लाल (थूक) उत्पादन, अन्न- पाचन आदि। वहां मस्तिष्क का सोच-विचार भी उसी के प्रकाश के कारण देखने में आता है। बुद्धि (intellect) एक (tongs) चिमटे की तरह है, जो संसार के सब पदार्थों को पकड़ सकता है, किंतु इस चिमटे में यह सामर्थ्य नहीं कि उन अँगुलियों को पकड़ सके जिनके वश में खुद है, और जिनके वश में आकर वस्तुओं पर अधिकार पाता है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि (Consciousness-विवेचना) अनुभव में आनेवाली वस्तुओं पर यद्यपि अधिकार प्राप्त कर सकती है, किंतु आत्मा को नहीं पकड़ सकती; क्योंकि आत्मा उन अँगुलियों की तरह है जिन्होंने चिमटे को वश में कर लिया है—

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरः, यं मनो न वेद, यस्य मनः शरीरं।
यो मनोऽन्तरो यमयति एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः॥
(बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ७ मं० २०)

अर्थ - वह जो मन (बुद्धि - अहंकार) में रहता है, मन से अंतर (पृथक) है, जिसको मन नहीं जानता, मन जिस के लिये शरीर (या वस्त्र की भाँति) है, जो भीतर से मन को चलाता है, वह तेरा आत्मा अंतर्यामी, अमृत है।

ख़िरद रा दोश मे गुफ़्तम कि ऐ अक्सीरि-दानाई।
हमत बेमग़ज़ हुशियारी हमत बेदीदा बीनाई॥
चे गोई दर वजूद आँ कीस्त कीं शायस्तगी दारद।
कि तो वा आबरूए-ख्वेश ख़ाके-पाए-ओसाई॥

अर्थ—कल रात मैं बुद्धि से कहता था कि ऐ समझ की रसायन! तेरा चातुर्य बिना मस्तिष्क के है, और तेरा समस्त दर्शन बिना आँखों के है। तू बतला कि इस शरीर में वह कौन है जो ऐसी योग्यता रखता है कि तू अपने मुखमंडल की कांति पर उसके पैरों की धूलि मलती है (या घिसती है)?

आपत्ति—संसार में तो दो ही प्रकार की वस्तुएं होती हैं - जड़ (बुद्धि-रहित, Unconscious) और चेतन (बुद्धि-संपन्न, Conscious)। आपके कथन से यह सिद्ध होता है कि आत्मा चेतन नहीं है, क्योंकि आप कहते हैं कि आत्मा से कोई काम होते समय आत्मा में यह विचार नहीं होता कि "मैं कर रहा हूँ", अतः इस हेतु कि आत्मा 'चेतन' नहीं है, तो वह आपके तर्क शास्त्र की दृष्टि से 'जड़' अवश्य है।

बड़े आश्चर्य का स्थान है कि आपका वेदांत आत्मा को

जड़ मानता है। ऐसा जड़ आत्मा भला चेतन बुद्धि को शक्ति देने की क्या सामर्थ्य रख सकता है?

उत्तर—हाँ, संसार में तो दो ही प्रकार के पदार्थ होते हैं—जड़ और चेतन, किंतु आत्मा संसार की वस्तु नहीं है। यह माल इंद्रियों के गली कूचों में नहीं बिकता।

होश भी जिस पर फड़क जाएं वह सौदा और है।

पाए-ज़ाहिर रौ हमेशा रोह-ज़ाहिर मेरवद।
क़तआ रोह-बातनी हा कार-पाए दीगर अस्त॥

अर्थ—प्रत्यक्ष रीति पर चलनेवाला पग (अर्थात् वह पग जो सदैव केवल दिखलावे अर्थात् असत्य मार्ग या धर्म पर चलता है) सदैव दिखलावे के मार्ग पर चलता है, किंतु सच्चे रास्ते पर चलना किसी और पग का काम है।

आपके अर्थों में जड़ और चेतन को लिया जाय, तो आत्मा न जड़ है न चेतन, वह वर्णन में आ ही नहीं सकता। जब तक तुम जड़ और चेतन की बुद्धि रखते हो, आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जब आत्मसाक्षात्कार होगा, जड़ चेतन की बुद्धि उठ जायगी। यह तो बताओ, आत्मा सोचे तो क्या सोचे। सोचने के व्यवहार में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान होना आवश्यक है। आत्मा से भिन्न कोई वस्तु ही नहीं, तो पहचान के क्या अर्थ? और सोचना कैसा?

जब मैं भी वह (आत्मा), यह भी वह (आत्मा), वह भी वह (आत्मा), और सब ही कुछ वह (आत्मा) है, तो उससे भिन्न शेष क्या रहा जिसके विषय में वह (आत्मा) सोचे। आत्मा में संसार कहाँ रहा? सूर्य की इतनी आयु हो गई, सूर्य ने अँधेरा कभी स्वप्न में भी नहीं देखा। दिन और

रात, अँधेरा-उजेला भूमि के लिये थे। सूर्य में कभी रात पड़ी है न दिन चढ़ा है। दिवाकर ने जहाँ दृष्टि डाली, अँधेरे ने आँख चुराली। प्यारे! सूर्यों के सूर्य आत्मदेव के लिये अज्ञान या संसार कहाँ? आत्मा को भला कैसा सोच विचार? सोच विचार तो देश-काल वस्तु आदि में फँसे हुए के लिए ठीक है। जो भूत, भविष्य वर्तमान, सब काल में प्रकाशमान हो, वह किस कल या परसों की चिन्ता करे। जो सब घरों में विद्यमान हो, वह किस लुप्त स्थान तक पहुँचने की चिंता करे? जो सर्वव्यापक हो, वह किस प्राप्तव्य पुण्य के पाने का उपाय करे?

क्या सोचे क्या समझे राम? तीन काल का वाँ क्या काम?
क्या सोचे क्या समझे राम? तीन लोक नहिं उपजा धाम?
नित्य तृप्त सुखसागर नाम? क्या सोचे क्या समझे राम?
जहाँ राम तहाँ काम नाँह, जहाँ काम नाँहि राम।

यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं पश्यति,
तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं रसयते,
तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं शृणोति,
तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं स्पृशति,
तदितर इतरं विजानाति; यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्,

तत्केन कं पश्येत्, तत्केन कं जिघ्रेत्, तत्केन कं रसयेत, तत्केन कमभिवदेत्, तत्केन कं शृणुयात्, तत्केन कं मन्वीत्, तत्केन कं स्पृशेत् तत्केन कं विजानीयात्, येनेदं सर्वं विजानाति, तं केन विजानीयात्,······विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति।

(बृह० अ० ४ ब्रा० ५ मं० १५)

अर्थ—जहां भिन्नता दिखाई देती है, वहां एक दूसरे को

देखता है, वहां एक दूसरे को सूंघता है, वहां एक दूसरे का रस लेता है, वहां एक दूसरे की चर्चा करता है, वहां एक दूसरे को सुनता है, वहां एक दूसरे की चिंता करता है, वहां एक दूसरे को छूता है, वहां एक दूसरे को जानता है। किंतु जहां सब कुछ एक आत्मा ही आत्मा हो, वहां किसको किससे देखे? किसको किससे सूंघे? किसका किससे रस लेवे? किसकी किससे चर्चा करे? किस से किस की सुने? किससे किसकी चिंता करे? किस से किसको छुए? किस से किस को जाने? जिससे ये सब वस्तुएँ जानी जाती हैं, उस को किस से जाने?.......हे (प्रिये)! वह जानने वाला (ज्ञान-स्वरूप) किससे जाना जाय?

ऐ खुदा जोयाँ खुदा गुमकर्दाएद।
गुम दरीं अमवाज कुलजुम कर्दाएद॥

अर्थ--ऐ खुदा के ढूंढ़ने वालो! तुमने अपनी खोज से खुदा को लुप्त कर दिया है, और उन (प्रयत्न रूपी) लहरों में तुमने उस समुद्र (अनंत सामर्थ्य) को छुपा दिया है।

कहीं यह न समझ बैठना कि आत्मा दीवाल की भांति जड़ (अर्थात् अज्ञान से आवृत अथवा तमसावृत) है। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। श्रुति भगवती की आज्ञा सुनो--

यद्वैतन्न पश्यति, पश्यन्वैतन्न पश्यति, न हि द्रष्टुर्दृष्टेर् विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वाद्, न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत् पश्येद्॥ (बृ० उ०४-३-२३)

अर्थ--(यदि यों कहो कि) आत्मा वहां (सुषुप्ति में) कुछ नहीं देखता, तो (यद्यपि नहीं देखता पर) देखता हुआ नहीं देखता है, क्योंकि द्रष्टा स्वरूप आत्मा में देखने की शक्ति

कभी नष्ट नहीं होती, क्योंकि वह अविनाशी है; किंतु वहां कोई दूसरा है नहीं, आत्मा से भिन्न का नाम और चिन्ह वहां लुप्त है। अतः आत्मा देखे किसको ?

आगाह नियम अज़ शिबेह-तो दानम कि नज़ादस्त।
दो शीज़ए-अज़ दूदहे-शिवहे-तो अदम रा॥

'अर्थ-मैं तेरी उपमा से परिचित नहीं हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि प्रकृति ने तेरा उदाहरण उत्पन्न नहीं किया है। नास्ति की कुमारी कन्या तेरी उपमा के वंश में से है, अर्थात् तेरी उपमा 'नहीं' रूप है।

यद्वैतन्न मनुते, मन्वानो वै तन्न मनुते। न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वाद्, नतु तद्द्वितीयमस्ति, ततोऽन्यद् विभक्तं यन्मन्वीत॥ (बृह० ३०-४३-२८)॥

अर्थ-आत्मा कुछ नहीं सोचता और यद्यपि नहीं सोचता, पर सोचता हुआ नहीं सोचता है। आत्मा में सोचने की शक्ति कभी नष्ट नहीं होती, क्योंकि वह अविनश्वर है; किंतु वहां कोई दूसरा है नहीं, आत्मा से भिन्न का नाम और चिन्ह लुप्त है। अतः आत्मा किसको सोचे ?"

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति। एष ब्रह्मलोकः·········
एषास्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनंदः। (बृ० उ० ४—३—३२)

अर्थ-आत्मदर्शी ज्ञानी वह अनुपम सिंधु हो जाता है जिसकी तरंगें और बुदबुदे आदि चित्र-विचित्र प्रकार के हैं। ज्ञान ही ब्रह्मलोक है।······यही (आत्मज्ञान) उसकी परम गति है, यही उसकी बड़ी से बड़ी संपत्ति (विभूति), यही उसके लिये उच्चतम पद वा लोक है, और यही उसको परम आनंद है।

प्रेयान्यः सदनधनात्मज प्रियादेर्यत्प्रेम्ना प्रियमिति मन्यते पराचः । परार्थ्यावधिरवधीरि तैतरार्थ्यो विज्ञेयः स खलु सुखाब्धिरन्तरात्मा । (स्वराज्यसिद्धि)

अर्थ—आत्मा जो सब का सहारा है; धन, धाम, स्त्री, पुत्र आदि सब से अधिक जिसकी चाह है; जिसके लिये अन्य वस्तुएँ प्रिय होती हैं; जो सब की कामनाओं का परिणाम है; जिसके लिये सब वस्तुएँ हैं; और जिसको कोई प्रयोजन नहीं है; ऐसे आत्मा को क्यों साक्षात्कार न किया जाय, ऐसे आत्मा का ज्ञान क्यों न प्राप्त किया जाय ?

जिज्ञासु—अभी कुछ पल्ले नहीं पड़ा। गड़बड़ सी मच गई है।

ज्ञानी—आत्म-साक्षात्कार कोई खाला जी (मौसीजी) का घर नहीं है। यहां धैर्य और संतोष की आवश्यकता है। सरकार के यहां छोटी छोटी असामियों के लिये कई वर्ष आशावान् रहना पड़ता है, और फिर भी नौकरी चाहे मिले चाहे न मिले; अनन्त ज्ञान के लिये इतना अधिक असंतोष! वाह, साहस मत हारो।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः। (यजुर्वेद कठो० अ० १ व० २ मं० ७)

अर्थ-प्रायः लोग तो इस आत्मा की चर्चा सुनने ही नहीं पाते, सुन सुनकर भी लोग समझ नहीं सकते। धन्य है यह ज्ञा[न] बताने वाला, और धन्य है उसका मिलना, और धन्य है उ[स] विद्या का पाने वाला, और धन्य है, उस सच्ची शिक्षा का पा[ने]